

ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, एकता तथा मानव-धर्म-प्रेरक हिन्दी पत्रिका

<p>प्रवर्तक सद्गुरु श्री रामसूरत साहेब श्री कबीर मन्दिर, बड़हरा पोस्ट—महोबाजार जिला—गोंडा, उ०प्र०</p> <p>आदि संपादक सद्गुरु श्री अभिलाष साहेब</p> <p>संपादक धर्मेन्द्र दास</p> <p>आदि व्यवस्थापक प्रेम प्रकाश</p> <p>मुद्रक एवं प्रकाशक गुरुभूषण दास</p> <p>पारख प्रकाश इंटरनेट पर www.kabirparakh.com</p> <p>वार्षिक शुल्क—40.00 एक प्रति—12.50 आजीवन सदस्यता शुल्क 800.00</p>	<h3>विषय-सूची</h3> <table border="0"> <tr> <td>कविता</td> <td>लेखक</td> <td>पृष्ठ</td> </tr> <tr> <td>कहै ज्यों रहै त्यों संत सोई</td> <td>सद्गुरु कबीर</td> <td>1</td> </tr> <tr> <td>सद्गुरु महिमा</td> <td>ज्ञानदास</td> <td>7</td> </tr> <tr> <td>आत्म-निवेदन</td> <td>डॉ. वशिष्ठ तिवारी</td> <td>16</td> </tr> <tr> <td>निज आतम में अनुराग हुआ</td> <td>चन्दूलाल कबीरपंथी</td> <td>39</td> </tr> <tr> <td>स्तंभ</td> <td></td> <td></td> </tr> <tr> <td>पारख प्रकाश / 2</td> <td>व्यवहार वीथी / 13</td> <td>परमार्थ पथ / 31</td> </tr> <tr> <td>बीजक चिंतन / 33</td> <td>शंका समाधान / 41</td> <td></td> </tr> <tr> <td>लेख</td> <td></td> <td></td> </tr> <tr> <td>मंथन</td> <td>राधाकृष्ण कुशवाहा</td> <td>6</td> </tr> <tr> <td>सच और सच का व्यवहार</td> <td>श्री धर्मदास</td> <td>8</td> </tr> <tr> <td>लाओत्जे क्या कहते हैं?</td> <td></td> <td>17</td> </tr> <tr> <td>कर्म-सुधार ही सच्चा भजन है</td> <td>धर्मेन्द्र दास</td> <td>21</td> </tr> <tr> <td>कर्म का सिद्धान्त</td> <td>डॉ. रणजीत सिंह</td> <td>24</td> </tr> <tr> <td>अपना भविष्य स्वयं संवारे</td> <td>ब्रह्मचारी भूपेन्द्र</td> <td>26</td> </tr> <tr> <td>सुख से कैसे रहें?</td> <td>नारायण दास</td> <td>35</td> </tr> <tr> <td>आत्म दर्शन</td> <td>विमलनाभ श्रीवास्तव</td> <td>40</td> </tr> <tr> <td>मानुष जन्म चूकेहु अपराधी</td> <td></td> <td>43</td> </tr> </table>	कविता	लेखक	पृष्ठ	कहै ज्यों रहै त्यों संत सोई	सद्गुरु कबीर	1	सद्गुरु महिमा	ज्ञानदास	7	आत्म-निवेदन	डॉ. वशिष्ठ तिवारी	16	निज आतम में अनुराग हुआ	चन्दूलाल कबीरपंथी	39	स्तंभ			पारख प्रकाश / 2	व्यवहार वीथी / 13	परमार्थ पथ / 31	बीजक चिंतन / 33	शंका समाधान / 41		लेख			मंथन	राधाकृष्ण कुशवाहा	6	सच और सच का व्यवहार	श्री धर्मदास	8	लाओत्जे क्या कहते हैं?		17	कर्म-सुधार ही सच्चा भजन है	धर्मेन्द्र दास	21	कर्म का सिद्धान्त	डॉ. रणजीत सिंह	24	अपना भविष्य स्वयं संवारे	ब्रह्मचारी भूपेन्द्र	26	सुख से कैसे रहें?	नारायण दास	35	आत्म दर्शन	विमलनाभ श्रीवास्तव	40	मानुष जन्म चूकेहु अपराधी		43
कविता	लेखक	पृष्ठ																																																					
कहै ज्यों रहै त्यों संत सोई	सद्गुरु कबीर	1																																																					
सद्गुरु महिमा	ज्ञानदास	7																																																					
आत्म-निवेदन	डॉ. वशिष्ठ तिवारी	16																																																					
निज आतम में अनुराग हुआ	चन्दूलाल कबीरपंथी	39																																																					
स्तंभ																																																							
पारख प्रकाश / 2	व्यवहार वीथी / 13	परमार्थ पथ / 31																																																					
बीजक चिंतन / 33	शंका समाधान / 41																																																						
लेख																																																							
मंथन	राधाकृष्ण कुशवाहा	6																																																					
सच और सच का व्यवहार	श्री धर्मदास	8																																																					
लाओत्जे क्या कहते हैं?		17																																																					
कर्म-सुधार ही सच्चा भजन है	धर्मेन्द्र दास	21																																																					
कर्म का सिद्धान्त	डॉ. रणजीत सिंह	24																																																					
अपना भविष्य स्वयं संवारे	ब्रह्मचारी भूपेन्द्र	26																																																					
सुख से कैसे रहें?	नारायण दास	35																																																					
आत्म दर्शन	विमलनाभ श्रीवास्तव	40																																																					
मानुष जन्म चूकेहु अपराधी		43																																																					

शीघ्र प्रकाश्य

संत वाणी

परम पूज्य गुरुदेव श्री अभिलाष साहेब जी द्वारा संत परंपरा के अग्रदूत श्री धर्म साहेब जी एवं श्री पलटू साहेब जी की वाणियों पर लिखी टीका क्रमशः श्री धनी धर्म साहेब के अमृत उपदेश तथा श्री पलटू साहेब की वाणी के नाम से प्रकाशित हो चुकी है। उसी क्रम में पूज्य गुरुदेव जी द्वारा संत परंपरा के अन्य संत मनीषी श्री जगजीवन साहेब, श्री मलूक साहेब, श्री बुल्ला साहेब, श्री यारी साहेब, श्री गोविन्द साहेब, श्री भीखा साहेब आदि की वाणियों पर टीका लिखी जा रही थी। गुरुदेव जी द्वारा लिखित टीका का अब 'संत वाणी' नाम से प्रकाशन किया जा रहा है। जो जून 2014 तक छप जाने की संभावना है। यह ग्रंथ संत वाणी के प्रेमियों एवं मुमुक्षु साधकों के लिए अत्यंत उपयोगी एवं प्रेरणाप्रद है।

निर्बन्ध

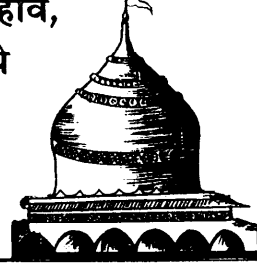
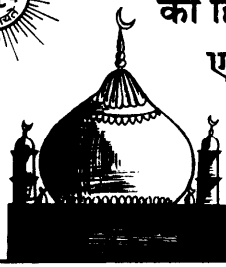
ENGLISH TRANSLATION
Kabir Bijak (Commentary)
Eternal Life
Art of Human Behaviour
Who am I?
What is Life?
Kabir Amritvani
The Bijak of Kabir (In Verses)
Kabir Bijak
(Elucidation Sakhi Chapter)
Saint Kabir and his Teachings
Life and Philosophy of Kabir



सद्गुरवे नमः

को हिन्दू को तुरुक कहावै,
एक ज़मी पर रहिये

—सन्त कबीर



पारख प्रकाश

साधु साधु सबहीं बड़े, अपनी अपनी ठौर ।
शब्द विवकी पारखी, ते माथे के मौर कबीर साखी

वर्ष]

इलाहाबाद, चैत्र, वि० सं० , अप्रैल , सत्कबीराब्द

[अंक

कहै ज्यों रहै त्यों संत सोई

कहैं कबीर तू साधु गुरु सेइ ले, दया के तख्त पर बैठ भाई ।
ग्यान के महल में सकल सुख साहिबी, साध संगति मिले भेद पाई
भेद पाये बिना भर्म भागै नहीं, भर्म जंजाल धरि काल खाई ।
साँच और झूठ को परखि तहकीक करि, संत जन जौहरी भला भाई
प्रगट परतच्छ है साँच सोइ जानिये, दृष्टि ना परै सो झूठ झाँई ।
बड़ी मरजाद पाखंड की जगत में, साँच के कहत ही कलह होई
चीन्हि साहिब परै काज तबही सरै, परम आनंद बड़ भाग सोई ।
सिफत बहुतै सुनी अजब दुलहा बना, बिरहनी बिरह गुन बहुत गाई
दरस बिन परस बिन आस पूजै नहीं, नीर बिन प्यास कबहुँ न जाई ।
नीर नियरे हुता प्यास भइ दूर की, मर्म जाने नहीं जुगत कोई
काँच के महल में भूसि कुत्ता मरा, आपनी छाँह को आप धाई ।
देखु दिबि दृष्टि यह सृष्टि जहँड़े गई, मड़ि रहा धोख सब घट्ट माहीं
मरकट मूँठि गहि आप छोड़ै नहीं, फँसि रहा मूढ़ जग फाँस माही ।
देखि के केहरी आपनी प्रतिमा, पड़ा है कूप में प्रान खोई
कहैं कबीर यह भर्म है दूसरा, मर्म जानै नहीं अंध लोई ।
करतूत बहुतै कहै रहनि में ना रहै, कहै ज्यों रहै त्यों संत सोई

पारख प्रकाश

स्व की खोज

योग दर्शन में कहा गया है—तीव्र संवेगानामासन्नः। तीव्र गति से चलने वाला अपने लक्ष्य-मंजिल तक जल्दी पहुंचता है। परंतु तभी जब वह सही दिशा में, सही रास्ते पर चल रहा हो। यदि कोई व्यक्ति तीव्र गति से चल तो रहा है, किंतु गलत दिशा में, गलत रास्ते पर चल रहा हो तो वह अपनी मंजिल तक कभी पहुंच नहीं सकता, बल्कि उससे अधिकाधिक दूर ही होता जायेगा। मंजिल-लक्ष्य तक शीघ्र पहुंचने के लिए तीव्र गति से चलने की आवश्यकता तो है, किंतु उससे अधिक आवश्यक है सही दिशा में, सही रास्ते पर चलने की। यदि कोई सही दिशा में, सही रास्ते पर धीरे-धीरे ही चलता रहे तो एक दिन वह अवश्य ही अपने लक्ष्य-मंजिल तक पहुंच जायेगा। आवश्यकता है अपने लक्ष्य को पहचान कर निरंतर उसी दिशा में चलने की।

यदि आपको कोई ऐसा पथिक मिले जिसे यह पता न हो कि वह कौन है, कहां से आ रहा है और कहां जा रहा है, तो उसे आप पागल ही कहेंगे। जिसे यह पता ही न हो कि उसे कहां जाना है और फिर भी चल रहा है तो वह कहां पहुंचेगा। जिसे यह पता ही नहीं कि मुझे क्या पाना है, फिर भी मेहनत कर रहा है तो उसे क्या मिलेगा। भौतिक क्षेत्र में तो हर आदमी अपना एक लक्ष्य निर्धारित कर उस दिशा में प्रयत्न करता है। इस क्षेत्र में आदमी ज्यादा भटकता नहीं है, भटकता है अध्यात्म के क्षेत्र में।

धर्म-अध्यात्म के क्षेत्र में हजारों वर्षों से यह कहा जा रहा है कि मनुष्य जीवन का उद्देश्य परमात्मा-ईश्वर को पाना या उसका दर्शन करना है। जो ईश्वर-परमात्मा के दर्शन कर लेता है उसका मनुष्य जीवन पाना सार्थक हो जाता है। इन बातों को पढ़-सुन कर कितने लोग परमात्मा पाने के लिए भटक रहे हैं। अकसर लोग संत-महात्माओं से प्रश्न करते हैं कि महाराज! परमात्मा कहां-कैसे मिलेगा? जब उनसे पूछा जाता है कि तुम

कौन हो जो परमात्मा को खोज रहे हो। तब वे कहते हैं कि मैं तो कुछ नहीं हूँ। जब उनसे कहा जाता है कि यदि तुम कुछ नहीं हो तो परमात्मा किसको मिलेगा और परमात्मा को कौन खोज रहा है, तब वे चुप हो जाते हैं। या जब उनसे पूछा जाता है कि तुम कौन हो जो परमात्मा को खोज रहे हो तब कहते हैं कि मुझे पता नहीं कि मैं कौन हूँ!

वस्तुतः परमात्मा कहां और कैसे मिलेगा यह जानने के पहले यह जानना आवश्यक है कि वह कौन है जो परमात्मा को खोज रहा है और उसे पाना चाहता है। परमात्मा की आवश्यकता किसको है? आखिर कोई परमात्मा को खोज रहा है, उसका भजन-पूजन-सुमिरन कर रहा है तो क्यों? अपनी शांति के लिए, अपने कल्याण के लिए ही तो। कोई परमात्मा की शांति के लिए, परमात्मा के कल्याण के लिए तो परमात्मा को नहीं खोज रहा है, परमात्मा का भजन-पूजन-सुमिरन नहीं कर रहा है। यह सब कर रहा है अपनी शांति, अपने कल्याण के लिए ही। तो अपना स्वयं वह क्या है? वह आखिर कुछ तो होगा ही जो परमात्मा को खोज रहा है। इसलिए परमात्मा को पाने, खोजने एवं जानने की अपेक्षा स्वयं को, परमात्मा को पाने-खोजने वाले को जानें। जिस दिन परमात्मा को खोजने-जानने वाले को जान लिया जायेगा उस दिन फिर अलग से परमात्मा को जानने-खोजने-पाने की आवश्यकता नहीं रह जायेगी। फिर यह पता चल जायेगा कि जिस परमात्मा को मैं पाना चाहता था वह मुझसे अलग नहीं है, किंतु मेरा अपना आपा, मेरा अपना अस्तित्व है। स्वयं को न जानने, स्व सत्ता का बोध न होने के कारण ही परमात्मा की कल्पना कर उसको खोजने, पाने, जानने का उपक्रम किया जाता है और बाहर से परमात्मा पाने के भ्रम में मनुष्य असली परमात्मा से वंचित रह जाता है।

वस्तुतः परमात्मा को पाना नहीं है, परमात्मा बाहर से मिलता भी नहीं है, क्योंकि बाहर से जो मिलेगा वह दृश्य विषय होगा, माया होगी। परमात्मा तो नित्य प्राप्त ही है, और वह है अपना स्वरूप। परमात्मा बिछुड़ा कहां है जो उसे खोजकर बाहर से पाना है। उसका केवल विस्मरण है। जैसे अपनी ही कोई वस्तु हमने

कहीं रखी है। इस समय उसका स्मरण नहीं हो रहा है कि कहां रखी है, इसलिए लगता है कि खो गयी है। उसे हम खोजते हैं। कई बार खोजते-खोजते हैरान-पेशान हो जाते हैं। स्मरण हो गया कि अमुक जगह रखी है, बस मिल गयी। न तो वस्तु खोई थी, न तो मिली। केवल विस्मरण से स्मरण हो गया। इसी प्रकार हमारा परमात्मा न हमसे दूर है और न खोया है। बाहरी प्राणी-पदार्थों में अहंता-ममता होने के कारण, मन की बहिर्मुख वृत्ति के कारण उसका विस्मरण हो गया है। मन अंतर्मुख हुआ, अपने आप का स्मरण हुआ, बस परमात्मा मिल गया।

ऊपर जो वस्तु का उदाहरण दिया गया है उसमें तो वस्तु कहीं खो भी सकती है, दूसरा उसे उठाकर कहीं दूसरी जगह भी रख सकता है, परंतु परमात्मा के लिए, स्वस्वरूप के लिए, आत्म अस्तित्व के लिए ऐसा कुछ भी नहीं है। न तो वह कहीं खो सकता है और न दूसरा उसे उठाकर कहीं अलग रख सकता है।

समस्या यह नहीं है कि परमात्मा कहां और कैसे मिलेगा, किंतु समस्या है मन के काषाय, विषय-विकार, अहंता-ममता, बहिर्मुखता, चंचलता दूर कैसे हों? परमात्मा को पाने के लिए साधना नहीं करना है, अपितु मन के काषाय, विषय-विकार, बाहरी प्राणी-पदार्थों के प्रति बनी अहंता-ममता को दूर करने के लिए साधना करना है। वस्तुतः इन सबको दूर करना, इनका त्याग करना ही तो साधना है। मन निर्मल होकर स्वस्वरूप में स्थित हुआ, बस परमात्मा मिल गया। स्वामी शंकराचार्य (विवेक चूडामणि, -) कहते हैं—

बाह्यानुसन्धिः परिवर्धयेत्फलं दुर्वासनामेव ततस्ततोऽधिकाम् ।
ज्ञात्वा विवेकैः परिहृत्य बाह्यां स्वात्मानुसन्धिं विदधीत नित्यम् ।
बाह्ये निरुद्धे मनसः प्रसन्नता मनःप्रसादे परमात्मदर्शनम् ।
तस्मिन्सुदृष्टे भवबन्धनाशो बहिर्निरोधः पदवी विमुक्तेः

अर्थात्—बाहरी विषयों का चिंतन परिणाम में आगे-आगे बुरी वासना ही अधिक बढ़ाता है। अतएव विवेक से अपने आत्मा को जानकर बाहरी विषयों को त्यागते हुए नित्य-निरंतर अपने आत्मा का ही चिंतन करता रहे। बाहरी पदार्थों का मोह छोड़ देने पर मन प्रसन्न रहता है और मन के प्रसन्न रहने पर परम-आत्मा का दर्शन-साक्षात्कार होता है और पूर्ण आत्म-

साक्षात्कार होने पर भव-बंधनों का नाश होता है। अतएव अनात्म वस्तुओं के मोह का त्याग ही मुक्ति का मार्ग है।

मान लो परमात्मा हमसे अलग है और साधना-भजन-सुमिरन से बाहर से परमात्मा मिलता है, तो उसके मिलने का साधन क्या है? किस साधन से वह मिलेगा? हमारे पास बाहर से कुछ पाने के लिए आंख, नाक, कान, त्वचा, जिह्वा और मन—ये छह साधन ही हैं। इनके अतिरिक्त और कोई साधन नहीं है और इनसे जो भी मिलेगा वह दृश्य-विषय होगा, माया होगी, कल्पना होगी। वह परमात्मा तो नहीं होगा। परमात्मा तो दृश्य-विषय से सर्वथा परे है, अपितु वही सबका ज्ञाता, मंता, बोद्धा है। इसीलिए उपनिषद् के ऋषि कहते हैं—

यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते
यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम् ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते
यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षुषि पश्यति ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते
यच्छ्रोत्रेण न शृणोति येन श्रोत्रमिदं श्रुतम् ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते

(केन उपनिषद् / -)

अर्थात्—जो वाणी से व्यक्त नहीं होता, किंतु जिसकी सत्ता से वाणी व्यक्त होती है उसको तू ब्रह्म जान। वाणी से व्यक्त जिस विषय की तू उपासना करता है, वह ब्रह्म नहीं है। मन द्वारा जिसका मनन नहीं हो सकता, किंतु जिसकी सत्ता से मन मनन करता है उसी को तू ब्रह्म जान। मन से मानकर जिसकी तू उपासना करता है वह ब्रह्म नहीं है। जिसे आंखें नहीं देख सकतीं, किंतु जिसकी सत्ता से आंखें देखने में समर्थ होती हैं, उसको तू ब्रह्म जान। आंखों से देखकर जिसकी तू उपासना करता है वह ब्रह्म नहीं है। जो कानों से नहीं सुना जा सकता, किंतु जिसकी सत्ता से कान सुनने में समर्थ होते हैं, उसी को तू ब्रह्म जान। कानों से सुनकर जिसकी तू उपासना करता है, वह ब्रह्म नहीं है।

यहां उपनिषद् के ऋषि साफ शब्दों में कहते हैं कि ब्रह्म, परमात्मा इंद्रियों का विषय नहीं है, किंतु उसी की

सत्ता से ही इंद्रियां प्रेरित होती हैं और अपने-अपने विषय को ग्रहण करती हैं। अतः ब्रह्म-परमात्मा को पाना नहीं है किंतु उसे जानना है और जानकर अपने आप में स्थित होना है। जो बाहर से सबका राग छोड़कर अंतर्मुख हो गया, स्वस्वरूप में स्थित हो गया उसने मानो परमात्मा को पा लिया। पा क्या गया वह परमात्मा हो गया।

बाहर से कुछ भी पाना बहिर्यात्रा है और बहिर्यात्रा में जो कुछ मिलता है सब एक दिन छूट जाता है, चाहे उसका नाम कुछ भी रख लिया जाये। अध्यात्म बहिर्यात्रा नहीं किंतु अंतर्यात्रा है और अंतर्यात्रा में पाना कुछ नहीं होता, पाने का मोह छोड़ना होता है। बहिर्यात्रा में हमने आज तक जो पाया उन सबका मोह छोड़ दें। सबको छोड़ने के पश्चात् छोड़ने वाला जो शेष रह जायेगा वही परमात्मा है।

पहले हम यह समझें कि अध्यात्म के केंद्र में क्या है, कौन है। अध्यात्म के केंद्र में कोई बाहरी ईश्वर-परमात्मा नहीं है, किंतु स्व सत्ता है, आत्म अस्तित्व है। स्व को केंद्र में रखकर ही तो हम सब कुछ करते हैं और उसी के सुख, शांति, कल्याण के लिए ईश्वर-परमात्मा, देवी-देवादि को पाना चाहते हैं। हम ही न हों तो ईश्वर-परमात्मा मिलेगा किसको? अध्यात्म स्व की खोज है, स्व में स्थिति है। स्व से बढ़कर प्रिय और कुछ हो ही नहीं सकता। इस विषय को अधिक स्पष्ट करते हुए याज्ञवल्क्य-मैत्रेयी संवाद में बृहदारण्यक उपनिषद् के ऋषि कहते हैं—

“पति के स्वार्थ के लिए पति प्रिय नहीं होता, किंतु अपने स्वार्थ के लिए पति प्रिय होता है। पत्नी के स्वार्थ के लिए पत्नी प्रिय नहीं होती, किंतु अपने स्वार्थ के लिए पत्नी प्रिय होती है। इसी प्रकार पुत्र, माता-पिता, धन, लोक, ब्रह्म आदि के स्वार्थ के लिए सब प्रिय नहीं होते, किंतु ये सब अपने स्वार्थ के लिए प्रिय होते हैं। यहां तक देवता के स्वार्थ के लिए देवता प्रिय नहीं होते, किंतु अपने स्वार्थ के लिए देवता प्रिय होते हैं। जब सब कुछ हम अपने स्वार्थ के लिए, आत्मा के लिए चाहते हैं तब आत्मा ही देखने, सुनने, मनन करने एवं निदिध्यासन करने योग्य है। हे मैत्रेयी! आत्मा के दर्शन, श्रवण,

मनन और विज्ञान करने से मानो सब कुछ जाना हुआ हो जाता है। अतः—आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेय्यात्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदं सर्वं विदितम्।”

परमात्मा को खोजने या पाने के पहले यह जानना होगा कि परमात्मा है क्या। बिना जाने खोजने का क्या मतलब। यह तो मंजिल की दिशा एवं स्थिति को जाने बिना ही वहां पहुंचने के लिए चल देना होगा। जब परमात्मा को जान लिया जायेगा तब न उसे खोजना रह जायेगा और न उसे पाने का भ्रम। जिस परमात्मा को पाकर हम तृप्त-कृतार्थ होना चाहते हैं वह कोई दूसरा नहीं, किंतु अपना आपा, अपना स्वरूप, अपनी आत्म सत्ता ही है और उसको पाना नहीं है, अपितु वह नित्य प्राप्त है, बस उसका बोध पाकर अपने आप में स्थित हो जाना है। अविद्या का परदा हटा, स्वरूप का बोध हुआ और परमात्मा मिल गया। सद्गुरु कबीर कहते हैं—

घूंघट का पट खोल रे तोको पिया मिलेंगे।

अर्थात् ऐ मनोवृत्ति रूपी दुलहन! तू घूंघट का पट, अविद्या का परदा हटा दे, तुझे आत्मा-पति का दर्शन-साक्षात्कार हो जायेगा।

मनुष्य का दुर्भाग्य यह है कि वह सबको जानना चाहता है, बहुत कुछ की खोज करता है, परंतु अपने आप को जानने का प्रयास नहीं करता, जिसको जाने बिना सारा जानना बेकार-निरर्थक हो जाता है। मनुष्य बाहर चाहे जितना जान ले, तमाम विषयों का ज्ञान प्राप्त कर ले, जब तक वह स्वयं को नहीं जानेगा तब तक उसके मन की जलन-पीड़ा दूर नहीं हो सकती। वह शोक से मुक्त और भवसागर से पार नहीं हो सकता। बाहरी विषयों का ज्ञान व्यवहार, लौकिक उन्नति एवं लोक-सेवा के लिए आवश्यक है, परंतु मन की जलन-पीड़ा की निवृत्ति के लिए तो आत्मज्ञान की ही आवश्यकता है। सारे ज्ञानों का पर्यवसान आत्मज्ञान में ही होता है। इसी तथ्य को स्पष्ट करने के लिए छांदोग्य उपनिषद् में नारद और सनत्कुमार का लंबा उपाख्यान दिया गया है।

. बृहदारण्यक उपनिषद् उपनिषद् सौरभ, पृ. ।

पारख प्रकाश : अप्रैल

“नारद सनत्कुमार से कहते हैं—भगवन् ! मैंने चारों वेद, पंचम वेद रूप इतिहास-पुराण व्याकरण, श्राद्धकल्प, गणित, उत्पातज्ञान, निधिशास्त्र, तर्कशास्त्र, देवविद्या (निरुक्त), ब्रह्मविद्या, भूतविद्या, भौतिक शास्त्र, रसायन-शास्त्र, प्राणिशास्त्र, शस्त्रविद्या, नक्षत्र विद्या (ज्योतिष), नृत्य-संगीत आदि पढ़ डाला है। इतना सब पढ़ने के बाद मैं केवल मंत्र-वेत्ता, शास्त्रों का ज्ञाता हुआ हूँ। आत्मवेत्ता नहीं हुआ हूँ। मैंने सुना है कि जो आत्मा को जान लेता है, जिसे अपने स्वरूप का यथार्थ ज्ञान हो जाता है वह शोक से पार हो जाता है—तरति शोकम् आत्मवित्। आप मुझे यथार्थ आत्मज्ञान देकर शोक से पार लगा दें।

इसके बाद नारद-सनत्कुमार का लंबा संवाद चलता है और तब अंत में सनत्कुमार कहते हैं—यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति भूमैव सुखम्—वह जो भूमा है, वही सुख है, अल्प में सुख नहीं है, भूमा ही सुख है।”

यहां ऋषि सनत्कुमार जिस भूमा की बात कहते हैं वह मनुष्य का अपना आपा, आत्म सत्ता ही है। यही तो सारे ज्ञान-विज्ञान, मत-पंथ-ग्रंथ का आधार है। आत्मा को हटा दें तो परमात्मत्व, ईशत्व, ब्रह्मत्व किसमें घटित होगा। अतः बाहर से न किसी ईश्वर-परमात्मा को पाना है और न उसमें मिलना है, किंतु अपने को जानकर अपने आप में स्थित होना है। जो सबकी अहंता-ममता त्यागकर, बाहर से लौटकर अपने आप में स्थित हो गया वह परमात्मा, ईश्वर, ब्रह्म, खुदा, गॉड सबको पा गया।

जब तक अपना आत्म तत्त्व निर्भ्रांत रूप से समझ में नहीं आता तब तक मनुष्य मन द्वारा सृजित कल्पना को ही परम तत्त्व मानकर उसके पीछे दौड़ता रहता है। गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं—

जब लग लखि नाहीं परत, तुलसी पर पद आप।
तब लग मोह बिबस सब, कहत पुत्र को बाप

अर्थात्—जब तक मनुष्य को यह समझ में नहीं आता कि मेरा अपना आपा ही पर पद-श्रेष्ठ पद-परम तत्त्व है तब तक लोग मोहवश मन की कल्पना को ही श्रेष्ठ मानते रहते हैं।

सूफी संत कहते हैं—

जाहिदे गुमराह का मैं किस तरह हमराह हूँ।
वह कहे अल्लाह है मैं कहुँ अल्लाह हूँ।

अर्थात्—कोई जाहिद (परहेजगार, त्यागी-संयमी) तो है, परंतु भटका हुआ है तो मैं उसका साथी कैसे हो सकता हूँ, क्योंकि वह कहता है कि अल्लाह कहीं दूर-बाहर है और मैं कहता हूँ कि मैं स्वयं अल्लाह हूँ।

राह हक हरगिज न याबी ता न गीरी चार तर्क।
तर्क दुनिया तर्क उकबा तर्क मौला तर्क तर्क

अर्थात्—सही रास्ता तब तक नहीं मिल सकता जब तक चार बातों का त्याग न कर दिया जाये। वे चार बातें हैं—दुनियादारी, आकाशीय स्वर्ग, अलग माना गया ईश्वर, और त्याग का अहंकार।

इसीलिए सूफी संत मंसूर ने अनलहक—मैं सत्य (ब्रह्म-खुदा) हूँ का नारा दिया था। भारतीय ऋषियों ने अहं ब्रह्मास्मि, तत्त्वमसि, अयमात्मा ब्रह्म, प्रज्ञानं ब्रह्म अर्थात् मैं ब्रह्म हूँ, तू ब्रह्म है, यह आत्मा ब्रह्म है और ज्ञान ही ब्रह्म है—कहा था। इसमें बाहर कहीं खोजने की और पाने की बात ही नहीं है।

सद्गुरु कबीर कहते हैं—

जेहि खोजत कल्पौ गया, घटहि माहि सो मूर।
बाढ़ी गर्भ गुमान ते, ताते परि गइ दूर

जिस परमात्मा, ईश्वर, ब्रह्म को खोजते अनादि काल का समय बीत गया, वह मूल तत्त्व घट ही में विद्यमान है। किंतु प्राणी-पदार्थों एवं दैहिक नाम-रूप का अहंकार एवं संदेह बढ़ जाने से वह दूर-जैसा हो गया है।

अध्यात्म पर से हटकर स्व की खोज है। पर का मोह-कल्पना छोड़कर स्व को जानकर स्व में ही स्थित होना है। पूज्यवर गुरुदेव श्री अभिलाष साहेब जी कहते हैं—

तू खोज रहा नित सत को, पर कभी विचार किया है।
सब सत्यों का तू सत है, जिस पर संसार जिया है
खोजना नहीं तुझको कुछ, केवल बस रुक जाना है।
पाना है नहीं किसी को, निज स्मृति में आना है

—धर्मेन्द्र दास

मंथन

लेखक—राधाकृष्ण कुशवाहा

कोई भी विवेकी जन पूजा-पाठ की मनाही नहीं करते। वे भी मानते हैं कि ऐसा व्यक्ति अध्यात्म के क्षेत्र में कुछ भी न करने वालों से तो अच्छा ही है। वह इस दिशा में चल तो पड़ा है। नामाङ्कन तो करा लिया है। अगली कक्षा का हकदार वही तो हो सकता है। इसलिए वह प्रारम्भिक सीढ़ी के समान है।

वैसे पूजा-पाठ से भी कई लाभ हैं जैसे मन में एकाग्रता का आना, कुछ कोमलता का आना, क्षणिक मानसिक शान्ति, बुरे कर्मों के करने से भय, एक सहारे की अनुभूति आदि। किन्तु इसी पूजा को अन्तिम लक्ष्य मान लेना समझदारी नहीं है। आस्थापूर्वक पूजा करते हुए भी सत्य की खोज करते रहना चाहिए। यथार्थ का परिचय होने पर वह स्वयमेव सही मार्ग अपना लेगा। उसे अपने भटकाव का भान हो जायेगा। उसे लगेगा कि केवल आस्थापूर्वक किसी खम्भे को मां मान लेने तथा बुलाने से हजारों जन्मों के बाद भी वह मां रूप खम्भा नहीं बोलेंगा। जो अपनी रक्षा का सामर्थ्य रखेगा वही दूसरे की भी कुछ रक्षा कर पायेगा।

मूर्ति पूजा को सोलह आने सार्थक कहने वाला कोई भी व्यक्ति एकलव्य का उदाहरण दे सकता है कि वह गुरु द्रोणाचार्य की मूर्ति स्थापित कर धनुर्विद्या में बहुतों से आगे निकल गया। इस बिन्दु पर हमें केवल ऊपर-ऊपर न कहकर थोड़ा रुककर गहराई से सोचना होगा।

यह बात बिल्कुल मान्य है कि यदि हम महापुरुषों के बताये मार्गों पर चलेंगे, उनके अच्छे चरित्र से प्रेरणा लेंगे तो हम भी ऊपर उठेंगे। क्योंकि हमारा आदर्श महान है और हम लक्ष्य की ओर लगन से प्रयत्नशील हैं। लेकिन मात्र मूर्ति के भरोसे रहें कि उसकी पूजा से हम धनी बन जायेंगे, ज्ञानी हो जायेंगे या अन्य इच्छित बातों में सफल हो जायेंगे तो ऐसा नहीं होगा। उसके लिए हमें स्वयं प्रयत्न करना होगा।

यहां एकलव्य गुरु द्रोणाचार्य को आदर्श मानकर धनुर्विद्या का अभ्यास करता है। उसका लक्ष्य ऊंचा, हौसला बुलन्द, लगन बेजोड़ है। ऐसा नहीं है कि गुरु की मूर्ति रखकर, उसके कारण वह एक दिन में

धनुर्विद्या में निष्णात हो गया। बल्कि जैसे कोई पहलवान विविध जगह जाता है, लड़ता है, अन्य के भी दांव-पेंच देखता है, सीखता है, स्वयं भी नये दांव-पेंच ढूंढता है और अखाड़े में अपने को पूरा मांजने के बाद वह अपने को एक कुशल पहलवान साबित कर पाता है वैसे ही एकलव्य को भी अपने को काफी समय तक तराशना पड़ा होगा। वह अनेक लोगों के सम्पर्कों, कठिन अभ्यासों, इससे सम्बन्धित विविध आयोजनों में शरीक होकर उसकी अनेक बारीकियों से परिचित हुआ होगा। वह रातोंरात धनुर्विद्या में निष्णात न बन कर महीनों-वर्षों के अथक प्रयास, लगन, श्रम से उपलब्ध अपनी कला से पाण्डवों को चकित किया होगा। प्रतिभा किसी का मुहताज नहीं होती और न किसी जाति, वर्ण, व्यक्ति विशेष की बपौती होती है।

जब एक देश किसी ज्ञान-तकनीक को दूसरे देश को किन्ही कारणों से नहीं देता है तो कभी-कभी उस देश के वैज्ञानिक वैसे ही या उससे भी उन्नत तकनीक का आविष्कार करने में सफल हो जाते हैं। जैसे आज भी कोई-कोई युवा वैज्ञानिक अपनी नयी खोजों से अपना नाम रोशन करते रहते हैं वैसे ही प्रतिभावान एकलव्य धनुर्विद्या के उच्च आदर्श प्राप्त करने के दौर में नया कीर्तिमान स्थापित करते हुए स्वयं उस कला का आविष्कार ही कर डाला हो तो कोई आश्चर्य नहीं। नयी-नयी चीजों का आविष्कार होता रहता है। उसे कौन बताये रहता है। वह किसी की लगन, सतत श्रम, विवेक, चिन्तन, प्रखर मेधा के सदुपयोग का सुफल होता है।

मूर्ति-चित्र को रखने, देखने, पूजने का मतलब यह होना चाहिए कि हम उनके सद्चरित्र, सद्कर्मों एवं सद्गुणों को याद कर उन्हें अपने व्यावहारिक जीवन में उतारकर स्वयं को संवारें। उसका प्रत्यक्ष लाभ हमें तुरन्त मिलने लगेगा। लेकिन लोग प्रायः यह मानकर चलते हैं कि बिना कुछ किये केवल उनकी पूजा कर लेने, मन्त्रों मान लेने से सभी मनोकामनाएं पूरी हो जायेंगी, किन्तु ऐसा कुछ नहीं होता। कभी तुक बैठ जाने

को लोग उसका ही फल मान बैठते हैं लेकिन पूजा करते, मन्त्रों मानते हुए भी जब कामनाएं पूर्ण नहीं होतीं तब उस समय इसे कोई निरर्थक नहीं मानता। ऐसी है हमारी अंधभक्ति।

इन्हीं में जब कोई इन बातों पर ध्यान देता है तब उसे सारहीन बातें समझ पड़ती हैं। किसी भी बात पर ध्यान देना, जांचना कोई पाप नहीं है। सभी धर्मों के पुरोहित या अन्धभक्त कुछ स्वार्थवश भले इसकी मनाही करें परन्तु ऋग्वेद के ऋषि भी जांच-परखकर बातों को मानने का निर्देश देते हैं—

सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत।

अत्रा सखायः सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि

(ऋग्वेद / /)

अर्थात्—जहां पर विवेकवान चलनी से सत्तू छान लेने के समान मन से वाणी को छान लेते हैं वहीं कल्याणप्रद लक्ष्मी निवास करती है तथा वहीं मित्र लोग मित्रता के भेद को जानते हैं।

इसका अर्थ हुआ कि वेद-शास्त्रों की अच्छी बातें ग्रहणीय और कसौटी पर खरी न उतरने वाली त्याज्य हैं। उपनिषद् के ऋषि भी इसी बात की पुष्टि करते हैं—

‘यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि।’—तैत्तरीय उपनिषद् / । अर्थात् जो हमारे सदगुण हैं उन्हें ग्रहण करो अन्य नहीं। मतलब बुरे को न ग्रहण करने के लिए कहा गया है।

इस जांच-परख के दौर में सही मार्ग ढूंढने के अवसर उपस्थित होते हैं और वैसे व्यक्ति को सही रास्ता मिल जाता है। जहां अंधेरे में केवल हाथ-पैर नहीं मारना होता; केवल आस्था-आस्था कह कर लाज बचाने की बात नहीं रहती बल्कि सत्य की कसौटी पर कसकर सही बातों का आचरण करना ही जीवन के लिए कल्याणकर होता है। ऐसा मार्ग आइने की तरह साफ होता है।

प्रकृति में सर्वत्र कारण-कार्य की व्यवस्था है, एक अटूट नियम है। उन्हीं से सृष्टि-ब्रह्माण्ड अनवरत संचालित है। अध्यात्म के क्षेत्र में प्रकृति और पुरुष की बात आती है। प्रकृति जड़ को कहते हैं जो मिट्टी, पानी, आग, हवा, आकाश का समूह है। इन तत्त्वों के परमाणुओं के गुण-धर्मों, क्रियाओं से सृष्टि का निर्माण,

पालन, विनाश होता रहता है। यही उनका ईश्वरत्व है। उन्हें ही गॉड पार्टिकल कहा जाता है।

जड़ और चेतन से प्राणियों का सृजन होता है। सभी प्राणियों में मनुष्य अपनी बुद्धि, विवेक, क्रियाओं और सामर्थ्य से सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। चेतन को ही पुरुष कहा जाता है। वह नित्य है, अमर है। वासनाएं ही पुनर्जन्म का कारण हैं। जब मनुष्य सदगुणों को अपनाते हुए विवेक साधना द्वारा वासनाओं से स्वयं को मुक्त कर आत्मस्थ हो जाता है तब वह आवागमन के चक्र से तो छूट ही जाता है; वर्तमान में वह पूर्ण तृप्त, शान्त, सर्वहितकारी भाव से पूर्ण होता है। ऐसा कैवल्य प्राप्त पुरुष जीवन्मुक्त होता है और शरीर छूटने पर विदेह मुक्त होकर अपनी निराधार सत्ता में विराजता है। यही जीवन का परम फल है। □

सद्गुरु महिमा

रचयिता—ज्ञानदास

वंदन सदगुरु चरणों में, मुक्तिदाता जो एक।
अविचल सुख व शांतिजहाँ, जीवन बनता नेक
संत शरण सुखमय है अति, मिट जाता सब क्लेश।
मिलता आत्मज्ञान जहाँ, जिव बसता निज देश
प्यारा देश सदगुरु का, जहाँ मिलता विश्राम।
चरणों में है स्वर्ग जहाँ, तीरथ चारों धाम
दया के सागर हैं सदगुरु, और नहीं जग कोय।
जो हित करते जीव का, निर्मल ज्ञान भिगोय
सद्गुरु दर्शन निर्मल करै, मन मलीन जो होय।
नहिं उपाय जग दूसरा, जेहि से मैल को धोय
पढ़ा-सुना सो देख रहा, सदगुरु जी जो महान।
समझ लिया महिमा अनंत, तिन सम नहिं जग आन
गुरु सेवा गुरु भक्ति से, निर्मल जीवन होय।
अहं हटे अरु मोह कटे, मन विकार सब खोय
गुरु सेवा निर्बंध करै, मोह बंधन में जीव।
परम वंदनीय सदगुरु जी, जीवहिं लखावैं शिव
सद्ज्ञान धन आप दिये, मिट्टी भूख अरु प्यास।
नमन स्वीकारें हे गुरु, और नहिं कुछ पास

पारख प्रकाश : अप्रैल

सच और सच का व्यवहार

लेखक—श्री धर्मदास

(गतांक से आगे)

अवैदिक दर्शनों में चार्वाक दर्शन बौद्ध धर्म और जैन धर्म से भी प्राचीन है। श्रुति-प्रमाण का निषेध करने के कारण तीनों नास्तिक कहे जाते हैं। इसके मानने वाले लोग शुद्ध बुद्धिवाद पर आस्था रखते थे तथा परपक्ष का खण्डन करना ही उनका प्रधान ध्येय था। उन्हें वैतण्डिक भी कहते हैं। वेद-ब्राह्मण के अतिरिक्त वे बुद्ध तथा जैन आगमों के भी निन्दक थे। पहले इन्हें लोकायतिक कहा गया। आगे चलकर यही चार्वाक कहलाये। “भारतीय दर्शन के इतिहास में बृहस्पति चार्वाक मत के संस्थापक माने जाते हैं। चार्वाकमत में केवल प्रत्यक्ष ही प्रमाण है। विषय तथा इन्द्रिय के सम्पर्क से होने वाला ज्ञान प्रत्यक्ष कहलाता है। हमारे इन्द्रियों के द्वारा प्रत्यक्षीकृत जगत ही सत है, उससे अन्य पदार्थ नितरां असत है। वे केवल कल्पना के विषय हैं, वास्तविकता के नहीं। चार्वाक दर्शन अनुमान को प्रमाण की कोटि में स्वीकार नहीं करता। इसकी तर्कप्रणाली बड़ी पैनी है।”

सर राधाकृष्णन लिखते हैं कि “पुराने रूढ़िप्रधान एवं जादू में विश्वास करने वाले धर्म को निकाल बाहर करने के लिए भौतिकवाद को बहुत कठिनाई का सामना करना पड़ा। विद्यमान संस्थाओं को, जिन्हें मान्यता प्राप्त थी और जो जनसाधारण के स्वभाव में अन्तर्निविष्ट हो गई थीं, उन्नत करने के लिए किये गये कितने भी उदार प्रयत्न सर्वथा निष्प्रभाव सिद्ध होते, यदि शताब्दियों की उदासीनता एवं अन्धविश्वास को चार्वाक-सम्प्रदाय सरीखे एक विस्फोटक बल के द्वारा एक साथ न हिला दिया गया होता (भारतीय दर्शन, भाग- , पृ.)।

चार्वाक की कुछ मान्यताएं : (भारतीय दर्शन, देवी प्र. चट्टोपाध्याय, पृ. -)

. जब स्वर्ग नामक सुखप्रधान लोक ही असिद्ध है, तब उसके लिए शरीर को तरह-तरह का क्लेश देकर तपस्या करना तथा समधिक द्रव्य का व्यय उठाकर यज्ञानुष्ठान करना एकदम व्यर्थ है। ज्योतिष्टोम यज्ञ में मारा गया पशु यदि वास्तव में स्वर्ग पहुंचने में समर्थ

होता है, तो यजमान अपने ही पिता को क्यों नहीं मारता? क्या यहां दान देने से स्वर्गस्थित पुरुषों की तृप्ति कभी सिद्ध हो सकती है? यदि ऐसी बात सम्भव मानें, तो महल के ऊपर रहनेवाले पुरुष के लिए निचले खण्ड में ही चीजें दी जातीं।

. लौकिक सुख जीवन का चरम-लक्ष्य है और इसकी प्राप्ति अर्थ के द्वारा हो सकती है, अतः अर्थ और काम दो ही पुरुषार्थ हैं। स्वर्ग-नरक तो इसी भौतिक जगत में विद्यमान है। सुख की प्राप्ति स्वर्ग है तथा दुःख का मिलना नरक है। अतः ऐहिक सुखवाद प्राणीमात्र का प्रधान लक्ष्य है।

. इस जगत की रचना में न तो कोई उद्देश्य है और न इस उद्देश्य को ध्यान में रखकर दूसरा कोई रचयिता ही है। साधारणजन देवताओं पर इस विश्व के निर्माण का उत्तरदायित्व रखते हैं, पर यह सिद्धान्त भी प्रमाणाभाव में निःसार है।

देवी प्रसाद चट्टोपाध्याय की यह टिप्पणी मर्मस्पर्शी है कि “इस प्रसंग में यह जान लेना नितान्त आवश्यक है कि उपलब्ध बार्हस्पत्य सूत्रों में उच्छृंखल जीवन का—ऋण लेकर घृतपान का—कहीं भी विधान नहीं मिलता। बृहस्पति विश्व की पहेली को समझाने के लिए वैज्ञानिक पद्धति के अवलम्बन करने वाले विद्वान थे। उनकी व्याख्या वैज्ञानिक व्याख्या के अनुरूप है। अवान्तर कालीन दार्शनिकों ने इन लोकप्रिय उपदेशों को चार्वाक के मत्थे मढ़कर उन्हें स्वार्थी भौतिक सुखवादी बतलाया है, परन्तु वास्तविक बात कुछ दूसरी ही थी। अतः उच्छृंखलता को प्रश्रय देनेवाले प्रचलित सिद्धान्त चार्वाक के न होकर पीछे किसी के द्वारा उनके ऊपर मढ़ दिये गये हैं।” “अतः आधिभौतिक सुखवाद के पुजारी होने पर भी चार्वाकों ने मानव-जीवन को विशृंखल होने से बचाया और पारलौकिक सुख की मृगतृष्णा में अपने बहुमूल्य शरीर को व्यर्थ गलाने वाले अधिकांश लोगों के सामने इस जीवन को सुखमय बनाने का ठोस उपदेश

पारख प्रकाश : अप्रैल

दिया। उनकी इस सेवा की ओर ध्यान देना हमारे लिए न्यायसंगत ही है (भार. दर्शन; देवी प्र. चट्टो. पृ. ,)।”

सर राधाकृष्ण एवं देवी प्रसाद चट्टोपाध्याय सरीखे दार्शनिकों एवं बुद्धिवादियों ने चार्वाक दर्शन को मानव जीवन को बचाने एवं उन्नति प्रदान करने वाला बतलाया फिर नास्तिक की संज्ञा प्रदान करने का रहस्य क्या हो सकता है? सर्वदर्शन संग्रह में चार्वाक दर्शन के निम्न कुछ सूत्र हैं जिनमें रूढ़िवाद, अंधविश्वास एवं प्राचीन अवैज्ञानिक परम्पराओं पर प्रहार होता है, अतः नास्तिक की संज्ञा प्रदान करने का सबसे बड़ा कारण यही हो सकता है :

न स्वर्गो नापवर्गो वा नैवात्मा पारलौकिकः ।
नैव वर्णाश्रमादीनां क्रियाश्च फलदायिकाः
अग्निहोत्रं त्रयो वेदास्त्रिदण्डं भस्मगुण्ठनम् ।
बुद्धि पौरुषहीनानां जीविका धातृनिर्मिता

अर्थात्—स्वर्ग कहीं नहीं है, अंतिम मोक्ष भी नहीं है और न ही अन्य लोक में कोई आत्मा है, और न ही चारों वर्णों के एवं आश्रमों आदि के कर्म कोई यथार्थ फलदायक हैं। अग्निहोत्र, लोगों की जीविका के साधन हैं।

कबीर वाणी के मर्मज्ञ जानते हैं कि इन विषयों पर कबीर साहेब ने क्या कहा है :

स्वर्ग के बारे में—
कृतिया सूत्र लोक एक अहई। लाख पचास की आयू कहई।
विद्या-वेद पढ़े पुनि सोई। बचन कहत परतक्षै होई
(बी. रमैनी / -

भावार्थ—धर्मग्रंथों की कृत्रिम वाणियों में कहा गया है एक ऐसा लोक है जिसमें लोगों की आयू पचास लाख वर्षों की होती है। ऐसे वेद-शास्त्र पढ़कर उपदेशक लोग ऐसा बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन करते हैं मानो वे स्वयं उस लोक (स्वर्ग) को प्रत्यक्ष देखकर आये हैं।

मांसाहार के बारे में—

हंड़िया हाड़ हाड़ थरिया मुख, अब षट कर्म बनेऊ
धर्म करे जहाँ जीव बधतु हैं, अकर्म करे मोरे भाई
जो तोहरा को ब्राह्मण कहिए तो काको कहिए कसाई
(बीजक, शब्द / -

यज्ञ/पशुहत्या के बारे में—

नेमी देखा धरमी देखा, प्रात करे अस्नाना
आतम मारि पषाणहि पूजे, उनमें किछऊ न ज्ञाना
(शब्द / -)

भूला बे अहमक नादाना, जिन्ह हरदम रामहिं ना जाना
बरबस आनि के गाय पछारी, गरा काटि जिव आपु लिया
(शब्द / -)

संतो पांडे निपुण कसाई
बकरा मारि भैंसा पर धावै, दिल में दर्द न आई
करि स्नान तिलक दै बैठे, विधि सों देवि पुजाई
आतमराम पलक में बिनसे, रुधिर की नदी बहाई
(शब्द / -)

पढ़े शास्त्र जीव वध करई, मूँड़ि काटि अगमन के धरई
(रमैनी /)

सृष्टिकर्ता के बारे में—

बर्णहु कौन रूप औ रेखा, दूसर कौन आहि जो देखा
वो ओंकार आदि नहीं वेदा, ताकर कहहु कौन कुल भेदा
(रमैनी / -)
तहिया होते पवन नहीं पानी, तहिया सृष्टि कौन उत्पानी
(रमैनी /)

ब्राह्मण-समुदायों की ठग-विद्या के बारे में :

बावन रूप छलेउ बलि राजा, ब्राह्मण कीन्ह कौन को काजा
ब्राह्मण ही सब कीन्हीं चोरी, ब्राह्मण ही को लागल खोरी
(रमैनी / -)

ऐसी विधि सुर विप्र भनीजे, नाम लेत पीचासन दीजे
(विप्रमतीसी/)

षटदर्शन एवं अन्य धर्मों की आलोचना :

औ भूले षटदर्शन भाई, पाखण्ड भेष रहा लपटाई
जीव शीव का आहि नशौना, चारिउ वेद चतुर्गुण मौना
जैनि धर्म का मर्म न जाना, पाती तोरि देव घर आना
(रमैनी / -)

पण्डित भूले पढ़ि-गुनि वेदा, आप अपन पौ जानु न भेदा
संज्ञा तर्पण औ षट कर्मा, ई बहुरूप करे अस धर्मा
गायत्री युग चारि पढ़ाई, पूछहु जाय मुक्ति किन पाई
(रमैनी / -)

पारख प्रकाश : अप्रैल

आदम आदि सुधि नहीं पाई । मामा हवा कहाँ ते आई
(रमैनी /)

तब नहीं होते गाय कसाई, तब बिसमिल्ला किन फुरमाई
(रमैनी /)

कबीर साहेब की वाणियों को उद्धृत करने का तात्पर्य चार्वाक सिद्धान्त का समर्थन या तुलना करना कदापि नहीं है। तात्त्विक दृष्टि से अनेक मतभेद हैं। यहां यह उल्लेख करना यथार्थ होगा कि पंथ-पोथी एवं परम्परा से हटकर स्वतंत्र चिंतक देश-विदेश में प्राचीन काल से होते रहे हैं। चार्वाक मत में धर्म के लिए स्थान नहीं, पाप-पुण्य का अस्तित्व नहीं, स्थूल भौतिक सुख ही परम पुरुषार्थ है—इनकी त्रुटियाँ हैं। लेकिन दार्शनिक जगत में प्रकृतिवाद के सिद्धान्त अत्यन्त प्राचीन काल से विख्यात हैं। वेदों में प्राकृतिक शक्तियों को देव मानकर उनकी उपासना में छंद गाये गये हैं। जिस तरह भारत में बृहस्पति तथा चार्वाक भौतिकवाद के समर्थक हैं, उसी प्रकार प्राचीन ग्रीस में डिमाक्रिटस (ई.पू.), एप्युरिअस (ई.पू.) तथा लूक्रेशियस (ई.पू.) इस मत के प्रचारक थे। इनका मत था कि इस जगत की रचना में न तो कोई उद्देश्य है और न इस उद्देश्य को ध्यान में रखकर दूसरा कोई रचयिता ही है। जगत रचयिता के अभाव में उपवास, व्रत, प्रार्थना आदि उपचारों से उसे संतुष्ट करने के विधान बतलाने वाला धर्म नितान्त असिद्ध है। आगे चलकर पाश्चात्य देशों में ही स्टोइक दार्शनिकों ने इन विचारों का खण्डन कर ईश्वर की सत्ता, जीव की अमरता, जगत की उद्देश्य-सम्पन्नता आदि सिद्धान्तों की पुनः स्थापना की है।

वस्तुतः विषय वस्तु है कि जिन्हें हम सत्य मानकर वाद-विवाद अथवा झगड़ा-फसाद करते हैं उनमें किनकी वाणी या ग्रन्थ सच को प्रश्रय देते हैं? अबतक की चर्चा से विदित होता है कि धर्ममतों तथा धर्मग्रन्थों में मतैक्य नहीं है। सभी धर्माचार्य अपने-अपने मत एवं अपनी-अपनी पोथी को ईश्वररचित होने का दावा करते हैं। अरुचिकर सत्य को न बोलने की नीति पर अगर चलें तब 'सच एक होता है' और 'ईश्वर एक है' के सिद्धांत असत्य सिद्ध होते हैं। अर्थात् अनेक मान्यताओं के बीच से वास्तविक सत्य को पा लेना समुद्र में गोता

लगाकर मोती निकालने जैसा उद्यम से कुछ कम नहीं होगा।

वेद का शुद्ध अर्थ है 'ज्ञान'। 'विद' धातु से वेद शब्द बना है जिसका अर्थ है 'जानना'। वेद भारतीय धर्म तथा दर्शन के प्राण माने जाते हैं परन्तु डा. पाण्डुरंग वामन काणे लिखते हैं कि "शूद्र को वेदाध्ययन करने का अधिकार नहीं था। यद्यपि शूद्रों को वेदाध्ययन करना मना था। किन्तु वे इतिहास (महाभारत आदि) एवं पुराण सुन सकते थे। भागवत पुराण में आया है कि तीनों वेदों को स्त्रियाँ, शूद्र एवं कुब्राह्मण (जो केवल जन्म मात्र से ब्राह्मण हैं) नहीं पढ़ सकते, अतः व्यास ने उनपर दया करके भारत की गाथा लिखी।" (भागवत / /) :

स्त्रीशूद्र द्विजबन्धूनां त्रयी न श्रुतिगोचरा ।

इति भारतमाख्यानं मुनिना कृपया कृतम्॥

स्त्री, शूद्र एवं कुब्राह्मण यदि ज्ञान का भण्डार 'वेद' नहीं पढ़ सकते तो क्या धर्माचार्य चाहते हैं कि वे मूर्ख बनकर 'वेद विद्'—वेद जानने वालों का गुलाम बनकर जीवन बितायें? व्यास जी को धन्यवाद कि उन्होंने कृपाकर के स्त्री, शूद्र एवं कुब्राह्मण के लिए भारत की गाथा (अब वही महाभारत बन चुका है) लिख दिया है। रामशरण शर्मा ने लिखा है कि "यहां पर स्पष्ट नहीं किया गया है कि शूद्र महाभारत पढ़ भी सकते थे या केवल सुन सकते थे। लेकिन पुराणों के विषय में भविष्य पुराण बतलाता है कि 'श्रोतव्यमेव शूद्रेण नाध्येतव्यं कदाचन्'—शूद्र इन्हें पढ़ नहीं सकते, केवल सुन सकते हैं.....वैदिक उद्धरणों से भरे इतिहास (रामायण-महाभारत) भी शूद्र समानरूप से सुन सकते हैं।"

डॉ. राधाकृष्णन लिखते हैं कि "महाभारत को कभी-कभी पांचवें वेद की संज्ञा दी जाती है। इसे आचरण एवं समाजशास्त्र के विषय पर प्रामाणिक ग्रन्थ समझा जाता है (आश्वलायन गृह्य सूत्र, , ,)। दुर्बल अथवा अन्त्यज वर्ग के लोगों के लिए भी नैतिक आचरण के नियमों की शिक्षा देना उक्त ग्रन्थ को अभिमत है। सायणाचार्य कृष्णयजुर्वेद के ऊपर की गई अपनी टीका में कहते हैं कि महाभारत और पुराणों की

रचना स्त्रियों एवं शूद्रों को कर्तव्य कर्म के विधान की शिक्षा देने के लिए हुई है, क्योंकि इन दोनों के लिए वेदों का पढ़ना निषिद्ध था (भारतीय दर्शन, भाग- , पृ.)। यहां आश्चर्य यह होता है कि शूद्रों एवं स्त्रियों के लिए पहले तो वेद पढ़ना निषिद्ध किया गया फिर नैतिक आचरण के नियमों की शिक्षा देने के लिए पांचवें वेद 'महाभारत' की रचना करने की उन्हें जरूरत क्यों पड़ी? उसी पृष्ठ पर डॉ. राधाकृष्णन समाधान करते हुए लिखते हैं कि "बौद्धधर्म के शास्त्र सबके अध्ययन के लिए खुले हुए थे, और ब्राह्मणों के धर्मग्रन्थ केवल तीन उच्च वर्णों, अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के लिए ही थे। इसलिए एक पांचवें वेद की आवश्यकता हुई जो सबके लिए उपलब्ध हो।"

डॉ. राधाकृष्णन के उक्त मत से समझना आसान हो जाता है कि बौद्धधर्म के ग्रन्थों का अध्ययन करने का अधिकार पाकर शूद्र-स्त्रियां शिक्षित हो रहे होंगे और उन्हें समझ में आने लगा होगा कि ब्राह्मणों के ग्रन्थों में कितना सच है और कितना झूठ। सच का ज्ञान जिसे हो जाये तो उसे अधिक दिनों तक मूर्ख बनाकर रखना संभव नहीं होता। अर्थात् स्त्रियों एवं शूद्रों का लोक-परलोक, नरक-स्वर्ग, नारी धर्म, वर्णधर्म, आश्रमधर्म, अश्वमेध यज्ञ के नाम पर शोषण आदि के प्रपंच का भाण्डा फूटने लगा होगा। शायद इसीलिए उन्हें, दुर्बल स्त्रियों एवं शूद्रों को नैतिक आचरण के नियमों की शिक्षा देने हेतु पांचवां वेद बनाना जरूरी लगा हो। चार्वाक, जैन एवं बौद्ध को नास्तिक बतलाकर बदनाम करने का उद्देश्य भी संभवतः इसी में छिपा हो क्योंकि वे लोग तर्क देकर सच और झूठ को बतला रहे थे।

डॉ. राधाकृष्णन का मानना है कि "दर्शन एवं धर्म की दृष्टि से रामायण इतने महत्त्व का ग्रन्थ नहीं है जितना कि महाभारत (भारतीय दर्शन, भाग- , पृ.)"। श्रीमद्भगवद्गीता महाभारत के भीतर है इसलिए महाभारत एवं गीता के रचयिता वेदव्यास ही माने जाते हैं। हिन्दुओं के लिए गीता वेद के बाद दूसरा सबसे बड़ा धर्मग्रन्थ है क्योंकि गीता के प्रवक्ता भगवान श्री कृष्ण स्वयं हैं। अतः गीता में जो कुछ कहा गया है उस सबका श्रेय या अपयश श्रीकृष्ण पर थोपा जा रहा है। कहा जाता है कि आठ हजार श्लोकों का 'जय' नामक

ग्रन्थ व्यास जी से सुनकर गणनायक गणेश द्वारा इसका लेखन हुआ। इस कृति का नाम 'जय' है। असत्य पर सत्य की जय, अधर्म पर धर्म की जय। फिर इसके विपरीत की स्थापना किस कवि की है? आठ हजार श्लोकों की मूल कृति की रचना 'जय' व्यासजी द्वारा की गई थी। इसके बाद यह पचीस हजार श्लोकों का हुआ, तब इसे 'भारत' कहा गया। जब एक लाख श्लोकों का हुआ तब इसे महाभारत कहा गया। स्वयं महाभारत यह स्वीकार करता है कि वर्तमान महाभारत तीन चरणों में पूरा हुआ था : प्रथम वेदव्यास द्वारा, द्वितीय जनमेजय के नागयज्ञ में वैशम्पायन द्वारा तथा तृतीय नैमिषारण्य में उग्रश्रवा द्वारा। डॉ. राधाकृष्णन का मत है कि 'जो ग्रन्थ पहले एक वीरगाथा का काव्य था उसने अब, ब्राह्मणधर्म के ग्रन्थ का रूप धारण कर लिया; भगवद्गीता संभवतः इसी युग की पुस्तक है। भगवद्गीता के रचयिता ने सच्ची काल्पनिक अन्तर्दृष्टि एवं संश्लेषणात्मक शक्ति के साथ एक नवीन दार्शनिक तथा धार्मिक संश्लेषण का सूत्रपात किया। इस प्रकार अपने अन्दर भिन्न-भिन्न कालों तथा भिन्न-भिन्न ग्रन्थकारों की रचनाओं का समावेश कर विविध विषयों का विश्वकोष बन गया (भारतीय दर्शन, भाग- , पृ.)।

मूल जिज्ञासा यह परखने की है कि भिन्न-भिन्न रचनाकारों ने भिन्न-भिन्न कालों में अपने विचारों का समावेश करते हुए मौलिक सिद्धान्त 'असत्य पर सत्य की जय, अधर्म पर धर्म की जय' का निर्वाह ईमानदारी से कर पाये अथवा अधर्म को धर्म बतलाकर जनसाधारण को भरमाने का प्रयास किया।

महाभारत की कितनी कथाएं हैं जो सत्य की कसौटी पर खरी नहीं उतरतीं, यहां तक कि महाभारत युद्ध में मरने वालों की संख्या भी सच से परे सिद्ध होती है। एक अरब छियासठ करोड़ बीस हजार वीर मारे गये जबकि वर्तमान भारत की कुल जनसंख्या लगभग एक अरब पचीस करोड़ है। मौसल पर्व से पता चलता है कि कृष्ण के यादववंशियों, जिन्होंने युद्ध में हिस्सा नहीं लिया था, का विनाश आपस में लड़कर युद्ध के बाद हुआ था। स्त्रियों ने युद्ध में हिस्सा नहीं लिया था। यदुवंशियों की स्त्रियों, जिनमें श्रीकृष्ण की सोलह हजार

रानियां भी थीं, का पंचनद (पंजाब) के आदिवासी लूटेरों ने अपहरण कर लिया था। भारत के अन्य प्रदेशों में भी लोग बचे होंगे जो युद्ध से अलग रहे थे। यदि स्त्रियों की संख्या पुरुषों से कम भी मानी जाये तब देश की आबादी चार अरब तक होने का अनुमान किया जा सकता है।

महाभारत का एक अन्य प्रसंग भी संदेह के घेरे में आ जाता है, जिसके अनुसार, जनमेजय ने व्यास जी से कहा—प्रभो! कृपया बतायें, इतने धर्मात्मा होते हुए भी उनमें कलह कैसे पैदा हुआ जिसके फलस्वरूप महाभारत का युद्ध हुआ? व्यास जी ने कहा—राजन! तुम्हारे पूर्वजों की कथा बहुत पवित्र है और उसके पठन-पाठन से सद्गति होती है। वह कथा मेरा शिष्य वैशम्पायन तुम लोगों को सुनायेगा। वैशम्पायन भरी सभा में बोले—इस महाभारत में जितने योद्धाओं का वर्णन हुआ है वे सब देवता और दानवों के ही अंशावतार थे। भगवान श्री कृष्ण के रूप में नारायण स्वयं अवतरित हुए। बलराम शेषनाग के अवतार थे। इसके अलावा लक्ष्मी रुक्मिणी के रूप में और स्वर्ग की अप्सराएं श्री कृष्ण की सोलह हजार रानियों के रूप में अवतरित हुईं। दानवों में विप्रचित जरासंध, रावण शिशुपाल, संहलाद शल्य, अनुहलाद धृष्टकेतु, कालनेमि कंस तथा शिवि द्रुमक के रूप में उत्पन्न हुए।...सूची बहुत लम्बी है। धर्मात्मा और भगवान के अंशावतार फिर भी अमर्यादित एवं अधार्मिक कार्य सम्पन्न हुए। यदि ये कथायें बहुत पवित्र हैं तब मानना पड़ेगा कि उस काल में अनैतिकता, अमर्यादित आचरण एवं झूठ को सच बताकर बोलने की कला ही पवित्रता का मापदण्ड थी। जबकि संत कबीर कहते हैं—‘सांच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप’। कबीर की कसौटी पर इनमें पाप अधिक है।

इस विश्लेषण का यह निष्कर्ष नहीं होगा कि जिन ग्रन्थों या दर्शनों के उदाहरण आये हैं उनमें सच बिल्कुल नहीं है। कबीर साहेब ने कहा—‘वेद कितेब कहा किन झूठा, झूठा जो न विचारे’। सच की पहचान उसे नहीं होती जो पोथी, ग्रन्थ अथवा बड़े धर्माचार्य के उपदेश को बिना विचारे सच मान लेता है। साहेब कहते हैं—

‘झूठ झूठा कै डारहु, मिथ्या यह संसार’—इस संसार में अनेक झूठ हैं। अतः झूठ और झूठे का त्याग करो। इस पंक्ति का यह अर्थ नहीं है कि संसार झूठा है इसका त्याग करो। चाहे धार्मिक क्षेत्र हों या सामाजिक, दोनों का व्यवहार अधिकांशतः झूठ के सहारे ही फूलता-फलता है। आगे की पंक्ति में मन्तव्य स्पष्ट करते हैं :

‘तेहि कारण मैं कहत हौं, जाते होय उबार’—मिथ्या का खुलासा इसलिए करता हूँ ताकि झूठ से बचाव हो सके। जो कथन विश्व के नियमों के अनुकूल है; जो किसी काल या देश में नहीं बदलता वह सच है। कबीर इन्हें सार शब्द या निर्णय वचन कहते हैं। कहते हैं : ‘सार शब्द से बाँचिहो, मानहु इतबारा हो’—विश्वास करो तुम केवल ‘सार’—essence, (तत्त्व, अर्क, मूलतः सारांश) शब्दों के सहारे सच पा सकोगे। धर्म, मत, पंथ, पोथी, पीर-महंत की वाणियों को हम सच मान लेते हैं परन्तु निरपेक्ष होकर सच-झूठ का पारखी होकर सच दूढ़ना अपेक्षित है। कबीर साहेब एक अद्भुत बात कहते हैं : ‘कहहिं कबीर तोहि निर्भय करों, परखो टकसारा हो’—(शब्द) टकसार में सरकारी सिक्कों की ढलाई होती है। आधिकारिक सिक्का वही होता है जिसकी राजा या सरकार द्वारा ढलाई की जाती है। आम लोगों द्वारा निर्मित सिक्के नकली होते हैं। अक्सर पंथ एवं पोथी मात्र भय पैदा करके अपनी बात मनवा लेते हैं लेकिन कबीर साहेब पहले निर्भय करते हैं और निर्देश करते हैं कि टकसाल यानी सच्चे ग्रन्थ एवं सच्चे गुरु को परखो।

उन्होंने निर्णयात्मक वचन कहकर सुझाव प्रस्तावित किया है—

भूल मिटै गुरु मिलै पारखी, पारख देहिं लखाई

कहहिं कबीर भूल की औषध, पारख सबकी भाई

(बीजक, शब्द)

पारखी दृष्टिकोण का विकास होने पर कोई भी व्यक्ति सच और झूठ समझने और ग्रहण करने में भूल नहीं कर सकता। और यदि पारखी गुरु का सहारा-साथ मिल जाये तब वह सच का दिग्दर्शन करा सकते हैं। □

पारख प्रकाश : अप्रैल

व्यवहार वीथी

ईर्ष्यालु नहीं गुणग्राही बनें

अंगुलिमाल की कथा अत्यंत प्रसिद्ध है कि वह जंगलों में रहता था और राहगीरों को मारकर उनकी अंगुली की माला बनाकर पहनता था। एक हजार लोगों को मारने का उसका संकल्प था। लोगों को वह मार चुका था। हजारों में उसका संपर्क तथागत बुद्ध से हुआ और उनके उपदेशों से प्रभावित होकर वह हिंसा-हत्या का मार्ग छोड़कर अहिंसक भिक्षु बन गया। उसके जीवन का आमूलचूल परिवर्तन हो गया।

भिक्षु बनने के बाद अंगुलिमाल एक दिन भिक्षाटन के लिए श्रावस्ती में गये। उसके पूर्व अत्याचार से जनता अवगत थी, साथ ही, क्रुद्ध भी। लोगों ने उसे भिक्षा मांगते देखा। उसके अत्याचार को याद कर किसी ने उसे ढेला फेंककर मारा तो किसी ने पत्थर फेंककर और किसी ने डंडा से मारा। अंगुलिमाल का भिक्षापात्र तो टूट ही गया, उसके शरीर में भी कई जगह चोट आयी और उसका सिर फट गया। खून बहने लगा। उसका चीवर (कपड़ा) रक्तमय हो गया और उसका रूप डरावना। टूटा पात्र, फटा चीवर, रक्त से भीगा शरीर लिए अंगुलिमाल तथागत बुद्ध के पास आये। इतना कष्ट सहन करने पर भी मारने वालों के लिए अंगुलिमाल ने एक भी कटु शब्द नहीं कहा। उसके मन में उनके लिए जरा भी रोष नहीं था। उसका मन पूरी तरह शांत था। उसने जरा भी दुख प्रकट नहीं किया।

अंगुलिमाल की इस शांत स्थिति को देखकर तथागत बुद्ध ने कहा—ब्राह्मण! तुमने अपने पाप-कर्मों को स्वीकार कर लिया। जिन कर्मों के कारण तुम्हें सैकड़ों-हजारों वर्षों तक नरक में रहना पड़ता, उन कर्मों के फल से तुम इसी जन्म में मुक्त हो गये।

एक दिन अंगुलिमाल एकांत में आसन लगाकर ध्यान में बैठे थे। ध्यान से उठने के पश्चात उसने कहा—कोई किसी का दण्ड से दमन करता है, कोई

शस्त्र से और कोई कोड़ा से दमन करता है, किन्तु तथागत द्वारा मेरा बिना दण्ड, बिना शस्त्र और बिना कोड़ा के दमन हुआ है। मैं पहले हिंसक था और अब अहिंसक हो गया हूँ। अब मेरा अहिंसक नाम सार्थक हो गया है। अब मैं किसी की हिंसा नहीं करता।

पहले मैं अंगुलिमाल नाम से प्रसिद्ध था। जंगल में पेड़ की छाया में या पर्वत की गुफा में पड़ा रहता था। दुर्गति की ओर ले जाने वाले कर्मों में लगा हुआ था और चिंतित रहता था, किन्तु अब! मैं सुख से सोता हूँ। सुख से उठता हूँ। मेरी तृष्णाएं शांत हो चुकी हैं। मैं मार (काम) के बंधन से मुक्त हूँ। मैंने पाप की जड़ को नष्ट कर दिया है। मैंने भारी भव-भार उतारकर फेंक दिया है, तृष्णा को समूल नष्ट कर दिया है और सभी धर्मों से श्रेष्ठ निर्वाण को प्राप्त कर लिया है।

* * *

अंगुलिमाल की कथा यह बताती है कि हत्यारा से हत्यारा और पापी से पापी व्यक्ति भी साधु संगति पाकर अपने को पूर्णतया बदलकर सज्जन, साधु और पुण्यात्मा हो सकता है। इतना ही नहीं, यदि वह अपने पूर्व पाप कर्मों को मनसा-वाचा-कर्मणा त्यागकर पूर्ण समर्पित भाव से तप-त्याग-साधना में लग जाता है तो इसी जीवन में अपना कल्याण कर सकता है और भव-बंधनों से पूर्णतया मुक्त हो सकता है।

महत्त्व इसका नहीं है कि व्यक्ति पहले क्या करता था, किन्तु महत्त्व इसका है कि व्यक्ति वर्तमान में क्या कर रहा है। हमारे भविष्य का निर्माण हमारा भूत नहीं करता, किन्तु हमारा वर्तमान करता है। भूत कितना भी अंधकारमय क्यों न रहा हो वर्तमान के उज्ज्वल शुभ कर्मों से हम अपना भविष्य पूर्ण प्रकाशमय बना सकते हैं। अतः भूतकाल में किये गये गलत कर्मों की याद करके ग्लानि और पश्चाताप में न डूबे रहकर वर्तमान में अपने को सतत शुभकर्मों में लगाये रखकर अपना भविष्य उज्ज्वल एवं सुखद बनाने की आवश्यकता है।

* * *

यहां यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि अंगुलिमाल अंगुलिमाल (अंगुलियों की माला पहनने वाला) बना

क्यों! क्या वह शुरू से ही खुंखार प्रकृति का था, क्या उसे लोगों को मारने में आनंद आता था और उसका वास्तविक नाम अंगुलिमाल था या कुछ दूसरा? अंगुलिमाल का पूर्व इतिहास जानने के पहले हम थोड़ा मानवीय प्रवृत्ति पर विचार करें।

बहुत-से लोगों में यह जन्मजात मानसिक दुर्बलता होती है कि वे दूसरों की सुख-समृद्धि, उन्नति, प्रसिद्धि, प्रतिष्ठा को सहन नहीं कर पाते। इन्हें देखकर वे अंदर-अंदर कुढ़ते रहते हैं, ईर्ष्या-डाह की आग में रात-दिन जलते रहते हैं कि ये इतने सुखी, प्रसिद्ध, प्रतिष्ठित एवं उन्नत क्यों हो गये। ऐसे लोग अपने दुख से उतने दुखी नहीं रहते जितने दूसरों के सुख को देखकर दुखी होते हैं। उनका चित्त ईर्ष्या-मल से आच्छादित हो जाता है और फिर वे दूसरों को बदनाम करने के लिए उनमें काल्पनिक दोषों का आरोपण कर उसी का प्रचार करने लगते हैं। अन्य लोग भी बिना छान-बीन, जांच-परख किये उन अफवाहों पर विश्वास करके, अफवाहों को सच मानकर सज्जन को दुर्जन, निर्दोष को दोषी एवं निरपराध को अपराधी मान लेते हैं। अंगुलिमाल इसी ईर्ष्या-दोष का शिकार हुआ था।

अंगुलिमाल कोसल के राजा प्रसेनजित के पुरोहित का पुत्र था। उसके पिता का नाम गार्ग्य तथा माता का नाम मैत्रायणी था। उसका बचपन का नाम अहिंसक था। बड़ा होने पर उसे विद्याध्ययन के लिए तक्षशिला भेजा गया। वह बड़ा मेधावी, सद्गुणी, सदाचारी, व्रतनिष्ठ, सेवापरायण, आज्ञाकारी था। वह दूसरों से सदा प्रिय वचन बोलता था, प्रियवादी था। उसमें बहुत से सद्गुण थे तथा वह अपने सभी गुरुभाइयों में सबसे अधिक प्रज्ञावान-बुद्धिमान था। उसकी नम्रता, सेवापरायणता तथा अन्य गुणों के कारण उसके गुरु-आचार्य उस पर खूब प्रसन्न रहते थे।

अहिंसक के ये गुण तथा उस पर उसके गुरु की प्रसन्नता उसके अन्य गुरुभाइयों के लिए ईर्ष्या का कारण बनी। वे उसे गुरु की दृष्टि से गिराना चाहते थे, परंतु उन्हें अहिंसक में कोई दोष नहीं दिखाई पड़ रहा था,

जिसकी शिकायत गुरु से की जा सके। परंतु जिस किसी प्रकार वे अहिंसक को आचार्य (गुरु) से विमुख करना चाहते थे। अंत में निश्चय करके उन्होंने आपस में तीन दल बनाया। एक दल आचार्य के पास गया। उसे आया देख आचार्य ने पूछा—क्या तुम लोगों को कुछ कहना है? शिष्यों ने कहा—‘गुरुदेव! एक बात सुनाई पड़ती है?’ ‘क्या?’ ‘अहिंसक का आचार्याणी (गुरु मां) से अनुचित संबंध है।’ उनकी बात सुनकर आचार्य ने डांटते हुए कहा—‘दुष्टे! भाग जाओ यहां से। मेरे पुत्र-तुल्य प्रिय शिष्य को बदनाम करके उसके और मेरे बीच फूट डालना चाहते हो।

किंतु योजना पूरी बन चुकी थी। पहला दल जाने के बाद दूसरा दल आया और उसने भी वही बात दोहरायी। उसके बाद तीसरा दल आया और उसने भी पूरी दृढ़ता के साथ वही बात कही। सबने एक ही बात कही और यहां तक कहा कि आचार्य को विश्वास न हो तो स्वयं परीक्षा करके देख लें। सबके द्वारा बार-बार एक ही बात कहने से आचार्य को निश्चय हो गया कि जरूर यह बात सत्य होगी और उनके मन से अहिंसक के प्रति प्रेम-स्नेह दूर होकर उसमें दुर्भावना पैदा हो गयी कि इस दुष्कर्म का अहिंसक से कैसे बदला लिया जाये, जिससे अहिंसक का सब कुछ नष्ट हो जाये। अंत में उन्होंने इसका उपाय सोच लिया कि अहिंसक से एक हजार लोगों को मारने की गुरुदक्षिणा ली जाये।

अहिंसक की विद्या-शिक्षा पूरी हुई। घर लौटने का समय आया। वह गुरु के समक्ष उपस्थित होकर कहा—गुरुदेव! गुरुदक्षिणा देने की इच्छा है। गुरु—स्तुत्य, अहिंसक! जो दक्षिणा मांगूंगा दोगे? अहिंसक—निश्चय, गुरुदेव! गुरु—तुम एक हजार लोगों को मारो। अहिंसक—गुरुदेव! यह कैसे होगा? मेरा कुल अहिंसक है, इसीलिए मेरा नाम अहिंसक रखा गया है। गुरु—अहिंसक! बिना गुरुदक्षिणा दिये विद्या फलवती नहीं होगी। और तुमने गुरुदक्षिणा देने के लिए प्रतिज्ञा की है। तुम्हें एक हजार लोगों को मारना होगा, तभी तुम्हारी गुरु दक्षिणा पूरी होगी।

गुरु की बात सुनकर अहिंसक को रोना आ गया। उसे लगा कि उसका जीवन, उसकी विद्या, उसका सब कुछ मानो नष्ट हो गया। अहिंसक ने हथियार बांधा, गुरु के पास जाकर उनकी वंदना किया और फिर प्रवेश कर गया कोशल के पास के जंगल में। जंगल के किनारे बैठा रहता, जो उस रास्ते से गुजरता उसको मार देता और गिनती करता था, किन्तु बाद में गिनती भूल गयी। तब मृतक की एक अंगुली काटकर रखने लगा, किन्तु अंगुली खो जाती, तब वह अंगुलियों की माला बनाकर पहनने लगा और उसका नाम पड़ गया अंगुलिमाल।

* * *

हर आदमी के मन में यह स्वाभाविक चाहना होती है कि मैं सुखी, समृद्ध, प्रसिद्ध एवं प्रतिष्ठित होऊँ, परंतु चाहने मात्र से कोई ऐसा हो नहीं सकता। इसके लिए बहुत सारी योग्यताओं की आवश्यकता होती है। चाहने एवं परिश्रम करने से जब उसकी यह कामना पूरी नहीं होती और वह देखता है कि कोई दूसरा उससे अधिक सुखी, समृद्ध, प्रसिद्ध एवं प्रतिष्ठित हो गया है तब वह दुखी हो जाता है और उसके मन में ईर्ष्या-जलन होने लगती है कि यह मुझसे आगे क्यों निकल गया। ईर्ष्या एक ऐसी आग है जो मन की प्रसन्नता, सुख-शांति को जलाकर राख कर देती है। ईर्ष्यालु आदमी दूसरों की उन्नति, गुण, योग्यता, समृद्धि को देखकर निरंतर संतापित होता रहता है। न उसे दिन में चैन पड़ता है न रात में।

इसीलिए महर्षि पतंजलि ने योग दर्शन (/) में कहा है कि मनुष्य को चाहिए कि वह सुखियों को देखकर उनके प्रति मैत्रीभाव रखे और गुणवानों-पुण्यात्माओं को देखकर प्रसन्न रहे। यदि हम सुखी-संपन्नों के प्रति मैत्री भाव रखते हैं तो हमारे मन में उनके लिए ईर्ष्या नहीं होगी, क्योंकि अपने मित्र की सुख-संपन्नता देखकर सबको अच्छा लगता है। इसी प्रकार यदि गुणवानों, ज्ञानियों एवं पुण्यात्माओं को देखकर हमारे मन में प्रसन्नता होती है तो उनके प्रति असूया भाव नहीं आयेगा। असूया का अर्थ है दूसरों के गुण, सुख-

समृद्धि को सहन न कर पाना, गुणों में दोष निकालना और उनकी निंदा-आलोचना करना। गुणवानों-पुण्यात्माओं की संसार में स्वाभाविक सुकीर्ति-प्रसिद्धि होती है। उसको न सह पाने के कारण उनमें मिथ्या दोषों की कल्पना करके जनसमाज में उनकी बुराई करके उन्हें बदनाम करने का प्रयास किया जाता है। ऐसा करने वाले तो रात-दिन नरक में जीते ही हैं, समाज की भी भयंकर हानि करते हैं, क्योंकि गुणवानों, ज्ञानियों, पुण्यात्माओं की बुराई सुनकर जनता उनसे दूर हो जाती है और उनके गुण-सद्गुण-सदाचार-ज्ञान से लाभ नहीं ले पाती।

यदि हम गुणवानों, ज्ञानियों, पुण्यात्माओं को देखकर प्रसन्न होते हैं, और उनसे सीख लेकर स्वयं उनके जैसा बनने के लिए प्रयास-साधना करते हैं तथा समाज में उसी की चर्चा-प्रशंसा करते हैं तो हमारा तो लाभ होगा ही, समाज का भी बड़ा लाभ होगा और लोगों को गुणवान-ज्ञानवान बनने की प्रेरणा मिलेगी। किसी की सुख-समृद्धि, विशेष गुण-योग्यता को देखकर जलना, उससे ईर्ष्या करना, उसकी बुराई करके उसे बदनाम करने, नीचे गिराने की चेष्टा करना भयंकर पाप है। ऐसा करने वाला जीवन में कभी सुख की नींद सो नहीं सकता, अनेक लोगों के दुखों का पाप भी उसके मत्थे मढ़ जाता है। जैसा कि ऊपर हम अंगुलिमाल के उदाहरण में देख चुके हैं कि उससे ईर्ष्या करने वाले निरपराध अहिंसक के जीवन में मिथ्या दोष की कल्पना कर उसे भयंकर-क्रूरकर्मा हत्यारा तो बनाये ही, सैकड़ों निरपराध लोगों की हत्या के कारण भी बने।

अंगुलिमाल के उदाहरण से यह भी सीख मिलती है कि कुछ लोगों की बातों पर बिना विचारे एकाएक विश्वास करने का दुष्परिणाम कितना घातक होता है। यदि अहिंसक के गुरु लोगों की झूठी बातों पर विश्वास न कर स्वयं सत्यता की छान-बीन एवं जांच-परख कर निर्णय लेते तो अहिंसक जैसे मेधावी, व्रतनिष्ठ, सदाचारी एवं आज्ञाकारी शिष्य से एक हजार लोगों को मारने की गुरुदक्षिणा क्यों मांगते और अहिंसक जैसा अहिंसक घोर क्रूरकर्मा हत्यारा क्यों बनता। यदि गुरु पूरी घटना की

स्वयं जांच करने के पश्चात निष्कर्ष निकालते तो अहिंसक के गुणों से समाज की बड़ी सेवा होती और समाज को बड़ा लाभ मिलता।

घर, परिवार, संस्था, समाज हर जगह हर क्षेत्र में प्रतिभासंपन्न, मेधावी, योग्य, गुणवान, सेवापरायण, आज्ञाकारी लोगों की कमी नहीं है, तो दूसरी तरफ उनसे ईर्ष्या करने वाले, जलने वाले, उनकी निंदा-बुराई कर उन्हें बदनाम करने वाले ईर्ष्यालुओं-निंदकों की भी कमी नहीं है। हमें अपने लिए सोचना है कि हम कैसे बनना चाहते हैं।

अहिंसक-अंगुलिमाल के जीवन से हमें कई बातों की शिक्षा मिलती है, जिनमें से मुख्य हैं—

. किसी में विशेष गुण, योग्यता, प्रतिभा आदि को देखकर उससे ईर्ष्या न करें, किंतु स्वयं उसके जैसा गुण, योग्यता, प्रतिभा आदि अर्जित करने का प्रयास करें।

. किसी पर मिथ्या दोषारोपण कर उसे बदनाम-निंदित करने का पाप न करें, किंतु उसके गुणों-सद्गुणों, योग्यता की प्रशंसा करें जिससे दूसरों को भी वैसा बनने की प्रेरणा मिले और लोग उसके गुणों-सद्गुणों-योग्यता से लाभ लें।

. किसी की बात पर एकाएक विश्वास न करें, किंतु शांत रहकर निष्पक्षतापूर्वक जांच-पड़ताल करें और तब कोई निर्णय करें।

. किसी से इस प्रकार बदला लेने की चेष्टा न करें कि वह सुपथ छोड़कर अपराधी बन जाये और समाज की पीड़ा का कारण बने।

. आदमी कैसा भयंकर से भयंकर पाप-अपराध क्यों न किया हो, यदि वह अपने पूर्वकृत पाप कर्मों से पूर्ण ग्लानि करके मनसा-वाचा-कर्मणा उनका त्याग कर देता है और समर्पित भाव से सुपथ में लगकर संयम-साधना-सदाचार से चलने लगता है तो इसी जीवन में अपना पूरा सुधार कर सकता है और परम शांति-कल्याण का भागी हो सकता है।

. सत्पुरुषों की संगति-सत्संग से भयंकर से भयंकर अपराधी भी सुधर सकता है। इसलिए कुसंग से दूर रहकर सदैव सत्पुरुषों की संगति-सत्संग का आधार लेकर रहना चाहिए।

आत्म-निवेदन

रचयिता—डॉ. वशिष्ठ तिवारी

हे गुरुवर तुम दयासिन्धु हो, मैं हूँ दरिद्र भिखारी।
बार-बार गुरु नमन करूँ मैं, तुम हो दारिद्रहारी

मैं हूँ अधम उधारन तुम, हो सबके हितकारी।
दीन-हीन को पार लगावत, अबकी मोरी बारी

मैं हूँ ज्ञानहीन अति दुर्मति, कृपादृष्टि दे डारी।
जन्म-जन्म से मोह निशा में, भरमत बारी-बारी

तेरे द्वारे आया गुरुवर, समझ परम उपकारी।
पार लगाओ मेरी नैया, पड़ी बीच मझधारी

भवनद भ्रम में डुबत हूँ गुरु, अब तेरी है बारी।
जब-जब भीड़ पड़ी भक्तन पर, तुमने उन्हें उबारी

अबकी बार ज्ञान दृष्टि दे, दूर करो अँधियारी।
पपिहा-जस स्वाती बूँद सम, मैं हूँ सदा निहारी

एक आस विश्वास गुरुवर, मैं हूँ तव बलिहारी।
काम क्रोध माया तृष्णा के, मैं हूँ अधिक विकारी

ज्ञान विराग भक्ति दें गुरुवर, मेरी यही गुहारी।
भाव-भक्ति का मरम न जानूँ, आया तेरे द्वारी

कहत दास गुरु बार-बार, अब अन्त समय की बारी।
दया करो मुझ पर गुरुवर, अब मैं हूँ दीन-दुखारी

. महत्त्व इसका नहीं है कि भूतकाल में हमने क्या किया है और क्या नहीं किया है, किंतु महत्त्व इसका है कि हम वर्तमान में क्या कर रहे हैं। हमारे भविष्य का निर्माण हमारा भूत नहीं करता, किंतु हमारे भविष्य का निर्माण हमारा वर्तमान करता है। इसलिए भूत की, बीती बातों की चिंता न कर अपने वर्तमान को सुंदर-उज्ज्वल, प्रशस्त बनाने के लिए हरसंभव प्रयत्न करना चाहिए।

—धर्मन्द्र दास

पारख प्रकाश : अप्रैल

लाओत्ज़े क्या कहते हैं?

. निर्मल, विनम्र और निष्काम बनकर समाज की सेवा करें

1. *Can you educate your soul so that it encompasses the One without dispersing itself?
Can you make your strength unitary and achieve that softness that makes you like a little child?
Can you cleanse your secret seeing so that it becomes free of stain?*
2. *Can you love men and rule the state so that you remain without knowledge?
Can you, when the gates of Heaven open and close, be like the female bird?
Can you penetrate everything with your inner clarity and purity without having need for action?*
3. *Generating and nourishing,
generating and not possessing,
being effective and not retaining,
increasing and not dominating:
this is the secret Life.*

अनुवाद

1. क्या आप स्वयं को इस ढंग से प्रशिक्षित कर सकते हैं,
कि आप ताओ को अपने में समाहित कर लें,
बिना अपने को खंडित किये?
क्या आप अपनी शक्ति को एकात्म कर सकते हैं,
और वह कोमलता प्राप्त कर सकते हैं,
जो आपको एक छोटे बच्चे की तरह बना दे?
क्या आप अपनी मानसिक दृष्टि को,
मांजकर दागरहित बना सकते हैं?
क्या आप मनुष्यों को प्रेम,
और शासन में सहयोग दे सकते हैं,
इतने पर भी आपको कोई जान न पाये?

क्या आप, स्वर्ग के द्वार खुलने और बंद होने के समय,

मादा पक्षी की तरह हो सकते हैं?

क्या आप बिना कर्मों की आवश्यकता महसूस किये,

अपनी आंतरिक शुचिता एवं पवित्रता से,
सब में प्रवेश पा सकते हैं?

पैदा करना और पोषण करना,

उत्पन्न करना, न कि अधिकार गांठना,

कार्य करना, न कि कब्जा करना,

बढ़ना, न कि आधिपत्य जमाना,

यही है रहस्यपूर्ण जीवन।

भावार्थ— . क्या आप अपने को इस अभ्यास में ढाल सकते हैं कि अपने को तोड़े बिना आप ताओ को अपने में लीन कर लें?

क्या अपनी शक्ति को एकबद्ध कर ऐसी कोमलता प्राप्त कर सकते हैं कि आप छोटे बच्चों जैसे कोमल हो जायें? क्या आप अपने मानसिक विचार को परिमार्जित कर उसे मलिनता-रहित बना सकते हैं?

. क्या आप मनुष्यों को प्रेम दे सकते हैं और शासन में सहायता कर सकते हैं; किंतु इतना करने के बाद आप अपने को ऐसा प्रदर्शन-रहित कर सकते हैं कि आपको कोई जान न पाये?

क्या आप स्वर्ग के द्वार खुलने और बंद होने के समय मादा-पक्षी के समान कोमल, सरल और समर्पित हो सकते हैं?

क्या आप बिना कुछ कर्म करने की आवश्यकता का अनुभव किये अपनी आंतरिक सरलता और पवित्रता से सब में घुलमिल सकते हैं?

. पैदा करना और पालन करना, उत्पन्न करना, उन पर अधिकार न जमाना, कार्य करना, परंतु कब्जा न करना, विकास करना, परंतु उस पर अपना प्रभुत्व न जमाना, यही रहस्यपूर्ण जीवन है।

भाष्य—क्या आप स्वयं को इस ढंग से प्रशिक्षित कर सकते हैं कि आप ताओ को अपने में समाहित कर लें, बिना अपने को खंडित किये। ताओ क्या है, उसे अपने में समाहित करना क्या है और अपने को खंडित न होने देना क्या है? ताओ है विश्वव्यापी नियम, धर्म जो वस्तु का स्वभाव है, जिससे निर्भय शाश्वत शांति मिले वह बोध। इसे अपने आचरण में उतार लेना अपने में समाहित करना है। अपने को तुच्छ न समझना अपने को खंडित न करना है।

ताओ विश्वव्यापी नियम, यूनिवर्सल लॉ है। उसके असंख्य रूप हैं। संसार में जो कुछ हो रहा है, उसी से हो रहा है। परंतु यहां आध्यात्मिक जीवन की उन्नति और अन्य मनुष्यों तथा प्राणियों की सेवा की बात है। पहले अपना जीवन निर्मल होता है, तब दूसरे की सही सेवा हो सकती है। अपना जीवन तभी पूर्ण निर्मल होता है जब सारी कामनाओं और अहंकार का त्याग होता है। जब ऐसी पूर्णकाम अवस्था आती है कि जीवन में कोई उद्देश्य ही नहीं रह जाता है, कृतकृत्य, यह जीवन की पूर्णता है। यह अवस्था जिस विवेक, बोध एवं आचरण से आये वह ताओ है। मन-इंद्रियों का संयम रखना, क्षमा करना, संतोष रखना, सहनशील होना, निर्मान रहना, निष्काम रहना, सबसे समता का बरताव करना, मोह-काम-क्रोध-लोभ का त्याग रखना, ऐश्वर्य न चाहना, अंतर्मुख रहना, यह सब ताओ के अनुसार चलना है, ताओ को अपने में समाहित करना है।

मनुष्य अपने को अपूर्ण, तुच्छ और हीन मानता है। वह भोग और भगवान से अपने को पूर्ण श्रेष्ठ और महान करना चाहता है, जो उसका अज्ञान है। यदि मनुष्य अपने मूलरूप में तुच्छ है तो वह कभी महान नहीं हो सकता। ग्रंथकार कहते हैं कि अपने को खंडित किये बिना, अपने को तोड़े बिना अपने में ताओ को समाहित कर लो। आप तुच्छ नहीं, महान हैं। आप अपने जीवन के ताओ को, सच्चे नियम को अपने में समाहित नहीं कर पाते हैं, इसलिए दुखी हैं। आपका ताओ तो आप में ही है। अपने मौलिक गुण-धर्म यथार्थ ज्ञान आप में ही

है, वही ताओ है। उसको पहचानें और उसके अनुसार चलें। बस, सुखी रहेंगे।

जब भोजन अधिक करोगे या बहुत कम, तब आपको दुख होगा। क्योंकि आपने संतुलन रूपी ताओ को अपने में समाहित नहीं किया। आप क्रोध करेंगे तो दुख पायेंगे क्योंकि आपने सहनशीलता रूपी ताओ को जीवन से निकाल दिया। ग्रंथकार कहते हैं कि क्या आप अपने को ऐसा प्रशिक्षित कर सकते हैं कि आपके जीवन की नस-नस में ताओ समाहित हो जाये। वह तो समाहित है ही, केवल समझना है और आचरण करना है। यह सब तभी होगा जब आप अपने को खंडित न करें। अपनी मौलिक महत्ता को समझें। आप महान हैं, केवल ताओ का विस्मरण एवं अवहेलना करने से, जीवन के सही ज्ञान और आचरण के सही नियम की उपेक्षा करने से दुखी हैं। ताओ का आदर करें, जीवन के ज्ञान और नियम का आदर करें और सुखी हो जायें।

क्या आप अपनी शक्ति को एकात्म कर सकते हैं, और वह कोमलता प्राप्त कर सकते हैं जो आपको एक छोटे बच्चे की तरह बना सके? अपनी शक्ति को एकात्म करना और छोटे बच्चे की तरह कोमलता प्राप्त करना, ये दो बातें महत्त्वपूर्ण हैं। मनुष्य की शक्ति बिखरी हुई है, इसलिए वह अपनी दुर्बलता का अनुभव करता है। जब कहा जाता है कि तम्बाकू मत खाओ, बीड़ी मत पीयो, तब लोग कहते हैं, बड़ा मुश्किल है। कई बार छोड़ने का प्रयत्न किया, लेकिन थोड़े दिनों में पुनः खाने-पीने लगा। लोग कहते हैं कि यह ठीक है कि हमारे बच्चे जवान हो चले हैं, परंतु पत्नी से या पति के कक्ष से अलग होकर रहना असंभव दिखता है।

वस्तुतः हमारे मन की संकल्प-शक्ति चारों तरफ बिखरी है। हम संसार के नाना विषयों में अपने को बेच दिये हैं। मनुष्य जब तक अपनी पूरी शक्ति समेटकर उसे एकबद्ध न करेगा तब तक किसी महत्त्वपूर्ण कार्य को नहीं कर सकता। जो विद्यार्थी अपनी पूरी शक्ति एकात्म कर विद्या पढ़ता है, वह अच्छे नंबर से पास

होता है। विज्ञान, राजनीति, व्यापार, कला, किसी भी दिशा में उन्नति करना है, तो अपनी शक्ति एकबद्ध कर उसमें एकजुट होकर लगना पड़ेगा।

जीवन का सबसे बड़ा काम है आध्यात्मिक उन्नति। इसी से सारे दुखों का अंत होकर निर्भय और शाश्वत शांति मिलती है; और इसके लिए छोटे बच्चे की तरह सरल और कोमल होना अत्यंत आवश्यक है। उपनिषद् के ऋषि कहते हैं, “ज्ञानी पुत्रैषणा, वित्तैषणा तथा लोकैषणा को छोड़कर जीवनयापन करता है। वह पांडित्य को छोड़कर बालवत सरल हो जाता है। फिर मननशील, मौन एवं वाक्यसंयमी हो जाता है। फिर मौन-अमौन से ऊपर उठकर आत्मतृप्त हो जाता है। ऐसा आत्मज्ञानी ही ब्राह्मण है। ऐसा ब्राह्मण कैसे हुआ जा सकता है? चाहे जिस साधन से हो, ऐसा ही हो।”

अहंकार भयंकर शत्रु है। इसका जड़ से नाश हुए बिना छोटे बच्चे की तरह सरल नहीं हुआ जा सकता, और तब तक पूरी आध्यात्मिक उन्नति नहीं हो सकती। ग्रंथकार पूछते हैं कि क्या आप अपनी पूरी शक्ति इकट्ठी कर और उसे एकबद्ध कर ऐसी आध्यात्मिक साधना में लग सकते हैं जिससे छोटे बच्चे की तरह कोमल एवं सरल हो जायें। यदि निर्भय और शाश्वत सुख-भोग की इच्छा है तो मात्र यही रास्ता है।

क्या आप अपनी मानसिक दृष्टि को मांजकर दाग-रहित बना सकते हैं? सीधी बात है, ग्रंथकार पूछते हैं कि क्या आप अपने मन को साधना से रगड़कर साफ कर सकते हैं, जिसमें थोड़ा भी मल न रहे? परमानंद प्राप्ति का यही रास्ता है, अन्य रास्ता ही नहीं है। हमें कौन दुख देता है? हमारे मन का मैल। अज्ञान से हम समझते हैं कि हमें दूसरा दुख देता है। दूसरे तो जैसा समझते हैं वैसा बरताव करते हैं। संसार के सारे प्राणी अहंकार-कामना का नशा खाकर उन्मत्त हैं। उसी में मैं भी हूँ। मुझे अपने नशा को सर्वथा दूर करना है। दूसरे के नशा को दूर करने का मेरा कोई वश नहीं है।

हम इतना ही कर सकते हैं कि अपने नशा को दूर करें और दूसरे के नशाजनित उपद्रव को निर्विकार भाव से सहते रहें। इसी साधन से अपना बेड़ा पार होगा। दूसरे की प्रतिक्रिया में तो सोचने से ही अपना नरक है।

सारा संसार अपने मन के राग-द्वेष की आग में जल रहा है। वे धन्य हैं जो दूसरे की क्रिया-प्रतिक्रिया में न पड़कर निरंतर अपने मन के मैल को भक्ति, ज्ञान तथा वैराग्य की साधना में धोते हैं। वे ही अतींद्रिय, निर्विषय एवं अलौकिक दिव्य आत्मिक सुख प्राप्त करते हैं जो शाश्वत है।

क्या आप मनुष्यों को प्रेम और शासन में सहयोग दे सकते हैं। इतने पर भी आपको कोई जान न पावे? मनुष्यों को प्रेम देना और शासन में सहयोग देना, किंतु अपने को शून्यवत बनाये रखना, यह बहुत बड़ी ऊंचाई है। लोग दूसरे की थोड़ी सेवा करके उसे लोगों में बढ़ा-चढ़ाकर बताना चाहते हैं। शासन-सेवा में रहनेवाले कितने ही नेता चुनाव के समय अपनी पार्टी से जब चुनाव लड़ने के लिए टिकट नहीं पाते, तब दूसरी पार्टी में चले जाते हैं। वे शासन में सहयोग नहीं करना चाहते, अपितु शासन-क्षेत्र से अपना भौतिक-लाभ लेना चाहते हैं।

संत लाओत्जे कहते हैं कि प्रेम दो, अपने को शून्य बनाकर। सबसे सहज निष्कामभावपूर्वक प्रेम का व्यवहार करो। इसी प्रकार परिवार, समाज तथा राष्ट्र के शासन में सहयोग करो, किंतु अपना प्रदर्शन न करो कि मैं कुछ करता हूँ। सद्गुरु कबीर कहते हैं, “कर्म करे और रहै अकर्म।”

संत लाओत्जे पहले सम्राट के अभिलेखागार के बड़े अधिकारी थे। पीछे वे त्यागपत्र देकर एकांत साधना में लग गये। पूर्व अनुभव होने से वे शासन की सेवा की बात करते हैं। परंतु वे सम्राट और राजकुमार को भी छोटा और शून्यवत बनकर ही शासन की सेवा करने की सीख देते हैं।

क्या आप, स्वर्ग के द्वार खुलने और बंद होने के समय मादा-पक्षी की तरह हो सकते हैं? स्वर्ग

• बृहदारण्यक उपनिषद्, अध्याय , ब्राह्मण ।

का द्वार क्या है? उसका खुलना और बंद होना क्या है और मादा-पक्षी की तरह होना क्या है? संत लाओत्जे के एक वर्ग के अनुगामी नाक-इंद्रिय को स्वर्ग का द्वार मानते हैं। इसकी श्वास-प्रश्वास-क्रिया को स्वर्ग का द्वार खुलना और बंद होना मानते हैं। वे कहते हैं कि श्वास की साधना ऐसी सावधानी और प्रौढ़ अभ्यास में होना चाहिए कि अपने कान उसकी आवाज न सुन सकें। यह साधना जिसकी पक्की हो जाती है, वह बच्चे की तरह कोमल हो जाता है और बहुत वर्षों तक जीता है। उसका श्वास फेफड़े से नहीं, अपितु नाभि से चलता है और उसकी अध्यात्म में सिद्धि हो जाती है। इस श्वास-साधना को उसी तरह समर्पित और एकनिष्ठ होकर करना चाहिए, जिस तरह मादा-पक्षी अंडे का एकनिष्ठ होकर सेवन करती है और चूजे निकल आने पर उनके मुख में चारा देती है।

मादा-पक्षी जैसा समर्पित, एकनिष्ठ एवं शांत होकर साधना करना तो ठीक है; परंतु नाक स्वर्ग-द्वार है और उसकी साधना स्वर्ग-द्वार का खुलना-बंद होना है और इसी श्वास-साधना से आध्यात्मिक ऊंचाई पर पहुंचा जा सकता है; यह सब महा भोलापन है। श्वास-साधना से आदमी दीर्घजीवी हो जाता है, यह भी अधिक भावुकता ही है। दीर्घजीवी होने का मोह भी अध्यात्म के विरुद्ध है। जीवनमुक्त होकर जीना जीवन का फल है, अधिक जीने का कोई महत्त्व नहीं है।

वस्तुतः स्वर्ग-द्वार है राग-द्वेष से सर्वथा रहित मन। जितने क्षण मन राग-द्वेष-रहित है, उतने क्षण स्वर्ग का द्वार खुला है और जैसे मन में राग-द्वेष आये, वैसे स्वर्ग-द्वार बंद हो गया। अतएव साधक मादा-पक्षी की तरह विनम्र, मौन, समर्पित, एकनिष्ठ तथा तत्पर होकर स्वर्ग-द्वार खोलने की साधना करे। स्वर्ग-द्वार खोलना-बंद करना इस तरह से भी समझा जा सकता है कि निर्मल मन हो जाना स्वर्ग-द्वार खुलना है और उसमें प्रपंच न आने देना स्वर्ग-द्वार बंद करना है। कुल मिलाकर मन की पूर्ण निर्मलता में जीना स्वर्ग-प्राप्ति है। नाना मत के पौराणिकों का स्वर्ग तो गंदी विषय-वासना का नग्न तांडव है; किंतु आध्यात्मिकों का स्वर्ग मन की

पूर्ण निर्मलता है। संत कबीर साहेब ने कहा है, “यदि मनुष्य मन को चंचल न करे तो वही उसका बिहिश्त है, स्वर्ग है।”

क्या आप बिना कर्मों की आवश्यकता महसूस किये अपनी आंतरिक शुचिता और पवित्रता से सब में प्रवेश पा सकते हैं? कर्म सेवा है, उसकी आवश्यकता है। उसका अपने स्थान पर बहुत बड़ा महत्त्व है। किंतु सब में प्रविष्ट तो वही होता है जिसके जीवन में पूर्ण शुचिता एवं निर्मलता है। हर मनुष्य राग-द्वेष की गंदगी में लिपटा जल रहा है। ऐसे मनुष्यों के बीच में एक ऐसा मनुष्य हो जो इस गंदगी से सर्वथारहित है, तो वह सभी समझदारों का प्राण-प्यारा हो जायेगा।

पवित्रात्मा का विरोध करने वाले दुर्जन भी उनकी महत्ता को अपने मन में समझते हैं, लेकिन किसी कारण-वश उनकी निंदा करते हैं।

पवित्रात्मा यह भी नहीं सोचता कि मैं सब में प्रवेश पाऊं। जीवन की पूर्ण पवित्रता जीवन की परम उपलब्धि है। इसके बाद तो कुछ पाना रह नहीं जाता। पवित्र व्यक्ति निरंतर जीवन्मुक्ति में जीता है। उसकी शीतलता अपने आप सब में फैलती है और वह स्वयं इस बात का ख्याल भी नहीं रखता कि मेरे द्वारा कोई लाभ पा रहा है। वह अपने में कृतार्थ है। परंतु लोगों के लिए ऐसा मनुष्य ही परम सुखदाता है। उससे लोगों को निर्मल जीवन जीने की प्रेरणा मिलती है।

पैदा करना और पोषण करना, उत्पन्न करना न कि अधिकार गांठना, कार्य करना न कि कब्जा करना, बढ़ना न कि आधिपत्य जमाना, यही है रहस्यपूर्ण जीवन। लोग संतान पैदा करते हैं, शिष्य बनाते हैं तथा अन्य ढंग से मनुष्यों का संगठन करते हैं। संत लाओत्जे कहते हैं कि उनकी सेवा करो, उनके हित के लिए कार्य करो, किंतु उन पर कब्जा करने, अधिकार जमाने की चेष्टा न करो। आपके शुभकार्यों से आपका प्रभुत्व बढ़ रहा है, आप उन्नत हो रहे हैं, तो इनके द्वारा

होय बिहिश्त जो चित न डोलावे बीजक, रमैनी

समाज की सेवा होने दो। उन पर अपना अधिकार जमाने की रंच मात्र इच्छा न रखो।

यही रहस्यपूर्ण जीवन है। इस जीवन में जीवन का रहस्य भरा है। जीवन का रहस्य एवं मर्म बहुत कम लोग समझते हैं। इसलिए मनुष्य दुखी है, विद्वान और ज्ञानी भी दुखी हैं, क्योंकि वे ज्ञानी तो हैं, शास्त्रों के ज्ञाता हैं, परंतु जीवन के ज्ञानी नहीं हैं। यह वैज्ञानिक

तथ्य है कि जैसे हम किसी पर अधिकार करना चाहते हैं, वैसे हम स्वयं उसके अधिकार में हो जाते हैं। पूर्ण स्वतन्त्रता जीवन्मुक्ति है, और वह पूर्ण स्वतंत्र नहीं हो सकता जो दूसरों को अपना गुलाम बनाकर रखना चाहता है। अतएव जीवन के रहस्य को उसने समझा जो सेवा करता है, प्रेम करता है, किंतु किसी पर अपना अधिकार नहीं जमाना चाहता।

कर्म-सुधार ही सच्चा भजन है

हर मनुष्य को अपनी करनी का फल भोगना होता है और करनी का फल ऐसा है कि कभी कट नहीं सकता, कोई काट नहीं सकता। हमारे जीवन में कर्मों का बहुत बड़ा महत्त्व है। कोई भी बिना कर्म के रह नहीं सकता। निकम्मा बैठ जाना अपने साथ, समाज के साथ, राष्ट्र के साथ द्रोह करना है। हमारे जीवन निर्वाह में बहुतों का योगदान तो है ही, हमारे ज्ञान प्राप्ति में भी बहुतों का योगदान है। समाज का सहयोग-संरक्षण न मिले तो न हम जीवित रह सकते हैं और न कुछ जान-समझ सकते हैं। समाज का बहुत बड़ा उपकार हमारे ऊपर है। हमारा भी कर्तव्य है कि हम ऐसा कुछ काम करें जिससे समाज की सेवा हो। ऐसा काम न करें जिससे समाज को तकलीफ मिले।

हम स्वयं तकलीफ नहीं चाहते फिर दूसरों को तकलीफ देना कहां न्यायसंगत है। और यह भी समझना होगा कि दूसरों को तकलीफ देकर स्वयं तकलीफ से बचा नहीं जा सकता। दूसरों को तकलीफ देकर स्वयं प्रसन्नता एवं सुख से जीवन नहीं जीया जा सकता। जैसा देंगे वैसा ही तो मिलेगा। सद्गुरु कबीर साहेब की यह साखी बहुत प्रसिद्ध है—

कबीर कमाई आपनी, निष्फल कभी न जाय।

बोया पेड़ बबूल का, आम कहां से खाय

अपनी कमाई कभी निष्फल नहीं जायेगी। बबूल का पेड़ बोकर आम के फल की आशा करना अपने को

धोखा देना है।

वैसे तो नाना मत के पुरोहितों ने पाप कर्मों के फल से बचने के लिए अनेक उपाय बता रखे हैं, सस्ते-सस्ते नुस्खे दे रखे हैं, लेकिन यह सब केवल भूलभुलैया है। अमुक नाम का जप कर लो, अमुक मंत्र का जप कर लो, अमुक ग्रंथ का पाठ कर लो, अमुक धर्मस्थल में चले जाओ, अमुक तीर्थ में चले जाओ, अमुक तिथि को उपवास कर लो, बस सारा पाप समाप्त। फिर पाप का फल भोगना नहीं पड़ेगा।

लेकिन यह धोखा है। आप स्वयं देख सकते हैं। बबूल का पेड़ लगाकर, बबूल का बीज जमीन में रोप कर आप रोज गंगाजल से सींचें। उसके पास बैठकर राम नाम, अल्लाह नाम, खुदा नाम, गॉड नाम, सतनाम, ॐ नाम का जाप करें। किसी भी मंत्र का पाठ करें और सोचें कि इसमें गेंदा या गुलाब का फूल आ जायेगा, तो क्या कभी आयेगा? क्या राम का नाम, गायत्री का जप, अल्लाह का नाम बबूल के पेड़ से गेंदा का फूल खिला सकता है? जब नहीं खिला सकता तो आपके पाप को काट कैसे सकता है? इस बात पर विचार कीजिये। धोखे में एवं भूलभुलैया में न पड़ें।

वैसे जिस नाम के प्रति आपकी श्रद्धा है उसका जप करें उसका खंडन नहीं है। उसके लिए रोक नहीं है। किसी भी नाम के जप से, किसी भी मंत्र के जप से, किसी प्रकार के पूजा-पाठ से मन में थोड़ी सात्त्विक

भावना आती है, श्रद्धा जगती है, मन एकाग्र होता है, प्रसन्नता आती है। यह सब इसका महत्त्व है। लेकिन यह सोचना कि इन सबसे हम पाप कर्मों के फल से बच जायेंगे, हमें ऋद्धि-सिद्धि मिल जायेगी, यह सब भूलभुलैया है, धोखा है, भटक जाना है।

अपने कर्मों का फल हमें भोगना पड़ता है। हम स्वयं तकलीफ नहीं चाहते तो हमारा पहला कर्तव्य होता है कि हम दूसरों को तकलीफ देने वाला काम न करें। जितना दूसरों को तकलीफ देने वाला काम करेंगे उतनी हमारी तकलीफ बढ़ती ही जायेगी।

भौतिक क्षेत्र में वस्तुओं को बांटने से वस्तुएं घटती जाती हैं। लेकिन मानसिक क्षेत्र में बांटने से बढ़ती जाती हैं। आपके पास सौ रुपये हों, एक-एक रुपये सौ आदमियों को आपने बांट दिया तो आपके पास क्या बचेगा? कुछ नहीं बचेगा। गणित का सीधा नियम है कि सौ रुपये पास में है, सौ आदमियों में एक-एक बांट दिये तो हमारे पास कुछ नहीं बचा। हम खाली हाथ हो गये।

लेकिन यदि हमारे पास तकलीफ हो। सौ आदमियों को हमने तकलीफ दी तो हमारी तकलीफ सौ गुना बढ़ जायेगी। हमारे मन में प्रसन्नता है, आनंद है, सुख है सौ आदमियों को हम आनंद बांटते हैं, प्रसन्नता बांटते हैं, सुख बांटते हैं तो हमारा सुख सौ गुना बढ़ जायेगा। सुख देकर देखें तो जितना सुख बांटेंगे उतना सुख बढ़ेगा और जितनी तकलीफ बांटेंगे, दुख बांटेंगे उतनी तकलीफ बढ़ेगी, दुख बढ़ेगा। अतः जो पाना चाहते हैं वही बांटें।

किसी को तकलीफ-पीड़ा-दुख देना यही तो ईश्वरद्रोह है। यही तो धर्मद्रोह है। धर्मद्रोह-ईश्वरद्रोह और कुछ नहीं है। जानबूझकर कभी किसी को तकलीफ न दें। जानबूझकर तकलीफ दे रहे हैं तो हम अपने भगवान के साथ ही विरोध कर रहे हैं। हिन्दू कहते हैं कि कण-कण में भगवान है। “सर्वं खल्विदं ब्रह्म” सारा संसार ब्रह्मरूप है। मुसलमान कहते हैं “कुल्लहू अल्लाह” जर्-जर् में खुदा है। जब जर्-जर् में खुदा है, कण-कण में भगवान है तो क्या प्राणियों में नहीं है।

यदि प्राणियों को तकलीफ दे रहे हैं तो खुदा और भगवान को ही तकलीफ दे रहे हैं। फिर आप खुदा और भगवान के भक्त कहां हुए? जबान से तो खुदा का नाम, भगवान का, अल्लाह-परमात्मा का नाम ले रहे हैं, और कर्म खुदा, परमात्मा, अल्लाह, भगवान के विरोधी करते जा रहे हैं और फिर भी शिकायत है कि भगवान हम पर खुश नहीं होता, हमारे पापों को काटता नहीं है। कहां से काटेगा?

कर्मों का सुधार करें। कर्मों का सुधार ही सबसे बड़ी पूजा है, कर्मों का सुधार ही सबसे बड़ा भजन है। यदि कर्मों को सुधारा नहीं गया तो न कोई पूजा काम आयेगी और न कोई पाठ और न ही कोई भजन काम आयेगा। कर्मों का सुधार, पवित्र कर्म करना ही सबसे बड़ी पूजा है। सद्गुरु कबीर तो यहां तक कहते हैं—

जहँ जहँ डोलों सो परिकरमा, जो कुछ करों सो पूजा।

जब सोवों तब करों दण्डवत, भाव मिटावों दूजा

मैं जहां-जहां डोलता हूं परिक्रमा कर रहा हूं। यह पूरा संसार भगवत्-मंदिर है और जितने प्राणी हैं सब भगवद रूप हैं। इन प्राणियों को छोड़कर भगवान और कहां मिलेगा? सद्गुरु कबीर साहेब कहते हैं—

खुले नैन हंसि-हंसि पहिचानों, सुंदर रूप निहारों।

खुले नेत्रों से हंस-हंस कर मैं पहचानता हूं, सुंदर रूप मैं बराबर देखता हूं। वह सुंदर रूप कौन? इन प्राणियों का रूप। प्राणियों को हटा दें तो खुदा, ईश, भगवान, परमात्मा, गॉड चरितार्थ कहां होंगे, कहां मिलेंगे। पूरा संसार भगवत् मंदिर है और प्राणीमात्र भगवान है। ऐसी भावना हमारे मन में आ जाये फिर देखें जीवन का कर्म कितने निर्मल, कितने पवित्र हो जायेंगे।

मंदिर में जाकर पूजा कर लेना सरल है, मस्जिद में जाकर इबादत कर लेना सरल है, गिरजा में जाकर प्रार्थना कर लेना सरल है। जीवन व्यवहार में प्राणियों के साथ सद्व्यवहार करना, उनकी सेवा करना कठिन है। क्यों? क्योंकि हमारा स्वार्थ आड़े आता है। और वह भी मिथ्या स्वार्थ। जितना-जितना हमारा स्वार्थ बढ़ता

जायेगा उतना-उतना हमारे द्वारा दूसरों को तकलीफ मिलती जायेगी। इसलिए हम अपने स्वार्थ पर संयम करें।

कबीर साहेब कहते हैं—“जहाँ जहाँ डोलों सो परिकरमा” जहाँ-जहाँ मैं डोलता हूँ मानो परिक्रमा कर रहा हूँ और “जो कुछ करों सो पूजा” जो कर रहा हूँ, पूजा कर रहा हूँ। ऐसी हमारी भावना पवित्र होनी चाहिए कि हमारे लिए हर कर्म पूजा बन जाये। झाड़ू लगाना भी पूजा है, बर्तन मांजना भी पूजा है। भोजन बनाना पूजा है। खेत में, खेलिहान में, दफ्तर में, कारखाना में काम करना पूजा है। यहां तक टट्टी साफ करना भी पूजा है। कोई काम घृणित नहीं है। भावना पवित्र होनी चाहिए बस।

हम मानते हैं कि जो टट्टी साफ करता है वह छोटा आदमी है, नीच है, अछूत है। किंतु कौन कह सकता है कि मैं टट्टी साफ नहीं करता हूँ। सारा का सारा काम दूसरों से करवाया जा सकता है। आप खेत दूसरों से जुतवा सकते हैं, दुकान दूसरों से करवा सकते हैं, पानी घर में दूसरों से भरवा सकते हैं लेकिन क्या आप अपनी टट्टी दूसरों से साफ करवाते हैं?

कौन कह सकता है कि मैं अपनी टट्टी साफ नहीं करता? बड़े-बड़े शंकराचार्य की टट्टी को क्या दूसरा साफ करता है? कौन धोता है उनकी टट्टी को? वे स्वयं धोते हैं। जब टट्टी साफ करने वाला नीच आदमी है तो पवित्र कौन है? सबके सब तो नीच हैं। कौन ऊंचा है इसमें?

टट्टी करके जगह को गंदी कर दे वह बड़ा आदमी और गंदगी को फेंककर जगह को साफ कर दे वह छोटा आदमी। यह है बुद्धि की विशेषता! जीवन की जो हकीकत है उसको हमें समझना चाहिए। कोई आदमी नीच नहीं होता, कोई आदमी अछूत नहीं होता, कोई आदमी अपवित्र नहीं होता। मानवमात्र एक समान है। हां, जिसके कर्म गंदे हैं, शरीर गंदा है, कपड़े गंदे हैं उन्हें आप अछूत मान लीजिए। उतने समय तक जब तक शरीर और कपड़े गंदे हैं। शरीर साफ कर लिया, कपड़े

साफ कर लिया, कर्मों को सुधार लिया फिर वह पवित्र हो गया।

हर आदमी का शरीर मिट्टी, पानी, आग और हवा से बना हुआ है। सबके शरीर में मांस, मल-मूत्र, खून, हड्डी, थूक, कफ—यही सब तो भरा हुआ है। कबीर साहेब ने कहा है—

एकै त्वचा हाड़ मल मूत्रा, एक रुधिर एक गूदा।

एक बुन्द से सृष्टि रची है, को ब्राह्मण को शूदा

(बीजक, शब्द)

साहेब कहते हैं कि सबके शरीर में हाड़, मांस, मल, मूत्र सब एक समान हैं, सबके शरीर में लगे हुए तत्त्व एक समान हैं तो छोटा कौन और बड़ा कौन? और सबके भीतर ब्रह्म बैठा हुआ है, राम बैठा हुआ है, खुदा बैठा है, जीव बैठा है। शारीरिक दृष्टि से तो सब अपवित्र हैं लेकिन आत्मिक दृष्टि से सब पवित्र हैं। कोई घृणित नहीं है, कोई नीच नहीं है। इसलिए मानव मात्र को मनुष्यता की निगाह से देखें और मानव मात्र के साथ मनुष्यता का व्यवहार करें यह हमारा पहला कर्तव्य होता है।

“जो कुछ करों सो पूजा” मैं जो कुछ करता हूँ सब का सब पूजा है। हर काम को आप पूजा समझकर करें तो देखेंगे काम करते-करते मन कितना प्रसन्न रहेगा! थकान नहीं होगी, भार नहीं लगेगा और इससे दूसरों को तकलीफ नहीं होगी।

आप दुकान पर बैठें तो यह सोचें कि यह जो मेरी दुकान है देव-मंदिर है और जितने ग्राहक आ रहे हैं ये सब देवी-देवता और भगवान-भगवती हैं। उनको देवी-देवता, भगवान-भगवती मानकर सच्चा सौदा दें, सही नाप से, सही तौल से दें और जो उचित मुनाफा चाहिए वह मुनाफा लें, क्योंकि बिना मुनाफा के व्यापार चलेगा कैसे! आफिस में जायें तो काम करवाने वाले जितने भी लोग आयें सबको भगवान-भगवती, देवी-देवता समझें। लेकिन आफिस में एवं दुकान में आने वाले लोगों को भगवान-भगवती, देवी-देवती समझें तो फिर घूस किससे लेंगे? मिलावटबाजी किससे करेंगे? ज्यादा पैसा

लेकर दो नंबर का सामान किसको देंगे! फिर तो व्यापार ही चौपट हो जायेगा। इसीलिए सर्वत्र गड़बड़ी है। लोग असली भगवान को भूल गये हैं।

जो भगवान खाता नहीं है उसको खिलाने का ढोंग किया जाता है और जो भगवान खाता है उस भगवान के साथ धोखाधड़ी की जाती है यही हमारी पूजा है। किंतु यह पूजा काम नहीं करेगी।

असली पूजा को समझना होगा। असली पूजा है जानबूझकर किसी को तकलीफ न देना, किन्तु जो बन सके सेवा का व्यवहार करना और यह पूजा किसके लिए जरूरी है? हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, यहूदी, बौद्ध, जैन मानवमात्र के लिए जरूरी है। कोई यह नहीं कह सकता है कि आदमी को अपने कर्मों को गंदा रखना चाहिए, गलत काम करना चाहिए, गलत व्यवहार करना चाहिए, गलत बात बोलनी चाहिए। जिसे कोई माने और कोई न माने वह धर्म नहीं है। कुछ देश के लोग मानें और कुछ देश के लोग न मानें वह धर्म नहीं है। वह असली पूजा नहीं है। जिसे सब देश तथा सब समय के लोग मानें वह असली धर्म और असली पूजा है।

मंदिर में जाना मुसलमान नहीं मान सकते, मस्जिद में जाना हिन्दू नहीं मान सकते। गिरजा में जाना न हिन्दू मानेंगे, न मुसलमान मानेंगे; गुरुद्वारा में जाना हिन्दू, मुसलमान और ईसाई कोई नहीं मानेगा। पूजा मुसलमान नहीं करेंगे, नमाज बौद्ध, जैन, सिक्ख, ईसाई और हिन्दू नहीं पढ़ेंगे। तो यह असली धर्म नहीं है। असली पूजा नहीं है। असली पूजा, असली धर्म क्या है? अपने आप पर संयम करना और दूसरों के साथ शील का, करुणा का व्यवहार करना। अपने मन, वाणी और कर्मों की निर्मलता और दूसरों के साथ सुंदर व्यवहार यह असली धर्म है और इसे कौन नहीं मानेगा? इसकी आवश्यकता किसके लिए नहीं है? इसलिए हम असली धर्म को समझें और अपने जीवन को पवित्र बनायें। जीवन पवित्र बनेगा कर्मों की पवित्रता से। हमारे कर्म ही हमारे जीवन के निर्माता हैं। हमारे कर्म ही हमारे सुख-दुख के दाता हैं। कर्मों को छोड़कर अन्य सुख-दुख का दाता बाहर कहीं नहीं है। अलग किसी भगवान को खुश करके उससे सुख पाने की आशा छोड़ें। असली भगवान अपने कर्म है, उस कर्म को सुधारें यही असली पूजा होगी।

—धर्मेन्द्र दास

कर्म का सिद्धान्त

लेखक—डॉ. रणजीत सिंह

जिसने भी कहा है कि 'करम गति टारै नहीं टरै' या 'आपन कर्म न मेटो जाई' सच ही कहा है। यह भी कहा गया है कि 'अवश्यमेव भोक्तव्यं कर्म शुभाशुभम्' अर्थात् किये हुए शुभ व अशुभ का फल अवश्य भुगतना पड़ता है। तुलसीदास ने भी कहा है 'कर्म प्रधान विश्व करि राखा। को करि तर्क बढ़ावहिं शाखा।' लक्ष्मण जी गुहराज से कहते हैं 'न काहु कोउ सुख दुख कर दाता। निज कृत करम भोगु सब भ्राता।' गीता में भी कहा गया है कि 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन। मा

कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि' अर्थात् मनुष्य कर्म करने में स्वतंत्र है, लेकिन फल में परतंत्र है। दूसरी तरफ यह भी कहा जाता है कि नामजप, दान, यज्ञ करने से, तीर्थयात्रा व योग आदि से सारे पाप कट जाते हैं। परस्पर विरोधाभासी बातों को पढ़ने से लगता है कि यदि कोई किसी की नामजप से खुशामद न करे और अपने शुभकर्म पर अटल रहे तो क्या उसे अच्छा फल नहीं प्राप्त होगा। उत्तर है अवश्य प्राप्त होगा। यदि नामजप का सिद्धान्त सही है तो कर्मफल सब झूठा, क्योंकि दोनों

में से सत्य एक ही है। गाल फुलाना और हंसना दोनों साथ नहीं हो सकते।

न्यूटन के तीसरे नियम के अनुसार क्रिया के विपरीत प्रतिक्रिया होती है ठीक इसी तरह मनुष्य जीवन में भी अच्छे कर्म के प्रतिफल अच्छे व बुरे कर्म के प्रतिफल बुरे होते हैं। अच्छे कार्य करने में वेतन, बोनस, प्रोत्साहन, प्रशंसा व पुरस्कार प्राप्त होते हैं व बुरे कार्य करने पर लताड़, दुत्कार, तिरस्कार व अपमान प्राप्त होते हैं, सब कुछ छीन लिया जाता है। खांड-खांड कहने से मुख मीठा नहीं होता, नीम-नीम कहने से मुख कड़वा नहीं होता और धनी-धनी कहने से कोई धनी नहीं होता। मनुष्य सोचता है कि नाम जपने से कल्याण होगा लेकिन होता नहीं। कबीर ने यहां तक कह दिया है कि 'करु बहियाँ बल आपनी, छाड़ बिरानी आस। जाके आँगन नदिया बहे, सो कस मरे पियास।' अपने जन्मदाता के प्रति आदरभाव रखना दूसरी बात है और नाम जप दूसरी। जो अपनी सहायता खुद करता है उसकी सहायता ईश्वर करता है। महमूद गजनवी ने जब सोमनाथ मंदिर तोड़ा तो शंकर जी उस मूर्तिभंजक को मूर्ति-भंजन करने से क्यों नहीं रोक सके। इसी तरह जब बख्तियार खिलजी ने पश्चिम बंगाल की गद्दी हथियाया तो वहां के राजा के जप, तप, व्रत, मख, दान, तीर्थस्थान व योग आदि से क्यों न मदद हुई। गाय में तैंतीस करोड़ देवताओं का वास बताया गया है, लेकिन जब गाय कसाई द्वारा काटी जाती है तो एक भी देवता मदद नहीं करता। यदि अपने आत्मबल से भागने में सफल हो जाये तो भले ही उसकी गर्दन कटने से बच जाये। दरअसल में सस्ता नुस्खा बंटने से लोग अकर्मण्य व प्रमादी ही हुए हैं न कि कर्मठ, जबकि कर्मठों की आवश्यकता है।

संस्कृत में एक श्लोक में कहा गया है कि 'उद्यमेन हि सिद्धयन्ति कार्याणि न च मनोरथैः। न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने भी कहा कि 'कुछ काम करो कुछ काम करो, जग में रह कर कुछ नाम करो। यह जन्म

हुआ किस अर्थ अहो, समझो जिससे यह व्यर्थ न हो।' हिन्दी वर्णमाला का व्यंजन क से शुरू होता है अर्थात् कर्म करने की प्रेरणा देता है। इंग्लिश वर्णमाला ए से शुरू होती है जिसका मतलब होता है एक्शन अर्थात् कार्य।

संसार में वह जाति उन्नति करती है जो सदैव कर्म करती रहती है (संसारोन्नति हेतु कर्मरताः)। नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः (उपनिषद्)। पुरुषार्थहीन आत्मलाभ नहीं कर सकता। लक्ष्मण जी राम जी से कहते हैं—नाथ दैव कर कौन भरोसा। सोषिय सिंधु करिय मन रोषा। कादर मन कर एक अधारा। दैव दैव आलसी पुकारा हिम्मते मर्दा, मददे खुदा।

खुदी को कर बुलन्द इतना कि हर तहरीर से पहले,
खुदा बंदा से खुद पूछे बता तेरी रजा क्या है?

जब हम पैदा हुए, जग हंसे हम रोये।
ऐसी करनी करि चलो, हम हंसे जग रोये।

(कबीर)

अच्छे लोग जहां होते हैं वह स्थान/माहौल अच्छा हो जाता है जबकि बुरे लोग जहां होते हैं वह स्थान बुरा हो जाता है। दो हाथ, दो पैर, एक सिर लेकर सभी पैदा होते हैं लेकिन कोई चपरासी बनता है तो कोई राष्ट्रपति अर्थात् यह सब कर्म का ही फल है। किसी बाहरी देव की मदद की आशा छोड़कर अपने भीतरी देव अर्थात् आत्मबल की मदद लेकर कार्य करो जीवन में सफल हो जाओगे। कबीर जी अपने शुभ कर्मों के अटल विश्वास पर ही काशी में न मरकर मगहर में मरे। ऐसा विश्वास किया जाता है कि जो काशी में मरता है वह स्वर्ग जाता है और जो मगहर में मरता है वह नरक में जाता है, यह मिथ्या वक्तव्य है। यदि ऐसा ही है तो आत्मबल रूपी कर्मफल का क्या होगा। अतः मनुष्य को भाग्य पर भरोसा न कर सदैव पुरुषार्थ में रत रहना चाहिए। भाग्य तो सदैव पुरुषार्थी के कर्मों का अनुसरण करता है। □

अपना भविष्य स्वयं संवारे

लेखक—ब्रह्मचारी भूपेन्द्र

(गतांक से आगे)

4. टी.वी. और मीडिया—वैज्ञानिक संसाधनों का आज खूब विकास हुआ है। मानव जीवन का ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं है जिसमें आधुनिक संसाधनों का प्रयोग न होता हो। हमारे दैनिक जीवन में टी.वी., रेडियो तथा समाचार पत्र-पत्रिकाओं की अहम् भूमिका है। ये ऐसे संसाधन हैं जिनके लिए ऐसा नहीं कहा जा सकता है कि इन सबका प्रयोग न हो। इनका प्रयोग तो हो लेकिन इसका जो दुष्परिणाम है उसका भी अवलोकन करते रहें। आज लगभग प्रत्येक घर में रेडियो, टी.वी. और कम्प्यूटर हो गये हैं। यह कहना ज्यादा अच्छा होगा कि प्रत्येक कमरे में अलग-अलग टी.वी. है। ऐसे-ऐसे चैनलों की भरमार है जिनमें पूरे चौबीसों घंटे आप जैसा चाहें वैसा प्रोग्राम देख सकते हैं। इसी के माध्यम से आप देश-दुनिया की खबरों से अवगत होते हैं। व्यापार के उतार-चढ़ाव की जानकारी करके व्यापार में उन्नति कर सकते हैं। तो दूसरी ओर मनोरंजन के नाम पर ऐसे-ऐसे अश्लील दृश्यों का प्रदर्शन किया जाता है जिससे वासना वृद्धि के अलावा और कुछ लाभ दिखाई नहीं पड़ता। आज विज्ञापन का युग है। छोटी-छोटी वस्तुओं से लेकर बड़ी चीजों तक के विज्ञापनों में प्रायः अर्धनग्न स्त्री शरीर को दिखाया जा रहा है। अगर बच्चों को इन दृश्यों से न बचाया गया तो बचपन से ही उनका मन वासना से वासित हो सकता है और उन्हें चरित्र निर्माण में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ेगा। अतः अभिभावकों को चाहिए कि अपने बच्चों की दिनचर्या का अवलोकन करते रहें कि उनका समय टी.वी. चैनलों या फिल्मों में ही तो व्यर्थ नहीं बीता जा रहा है।

आज लगभग प्रत्येक व्यक्ति के पास अपना मोबाइल है। यह बड़े काम की चीज है। परन्तु इसका दुरुपयोग किया गया तो यह बरबादी का बड़ा सरल सर्वसुलभ साधन है। अतः बच्चों को टेलीफोन या मोबाइल का अधिक आदती न होने दें। अपने समय और रुपयों का सदुपयोग करें। आप यह भी ध्यान

दीजिए कि आपका बच्चा अपना अधिक समय कहीं कम्प्यूटर-गेम में ही तो नहीं बिता रहा है। कितने घरों में बच्चों का अधिकांश समय इसी में चला जाता है। यही कारण है कि अब बचपन से ही बच्चों की आंखों में अधिक नंबर के चश्मे लगने लगे हैं। आज इन्टरनेट के प्रति लोगों के मन में बड़ा आकर्षण है और यह भी सर्वत्र सुलभ है, परन्तु उसका प्रयोग बहुत सावधानी से हो। नेट हो या टी.वी. इसमें जो जीवन निर्माण, परिवार-समाज निर्माण या काम की अन्य बातों को देख-सुनकर और उस पर विचार करके सदाचरण और संयम पूर्वक जीवन जीया जाये तो हम अपने और अपने समाज के लिए बहुत अच्छा आदर्श स्थापित कर सकते हैं।

5. गाली न सिखायें—आज समाज में जीवन गुजर के आधुनिक संसाधनों की कमी नहीं है। यदि कमी है तो शुभ संस्कारों की। कितने घरों में बुजुर्ग लोग ही बच्चों को गालियां सिखाते रहते हैं। झूठ बोलना सिखाते हैं। कितने माता-पिता बात-बात में गालियां बकते रहते हैं। इससे उनके बच्चे भी वैसे ही स्वभाव वाले हो जाते हैं। धन कमाते हैं बच्चों के लिए किन्तु उनके भविष्य पर ध्यान नहीं देते हैं। आप अपने आसपास के वातावरण को समझते रहें तथा बच्चों को भी सही सुझाव देते रहें। मारना-पीटना, गाली-गलौज, लड़ाई-झगड़ा से उन्हें सदैव दूर रखें। आप स्वयं गंभीर बनें तथा बच्चों को भी गंभीरता का पाठ पढ़ाते रहें।

6. बच्चों को उच्च आदर्श सिखायें—श्रीमान लांगफेलो जी की सूक्ति याद आती है—“सभी महापुरुषों की जीवनियां हमें याद दिलाती हैं कि हम भी अपने जीवन को महान बना सकते हैं।” जिन्हें हम महापुरुषों की श्रेणी में रखते हैं वे सभी अपने जीवन का अधिकतम समय अपने को शोधने तथा देश और समाज की सेवा में ही लगाये। इंसान ही महान होता है। छोटे बच्चों को महापुरुषों के आदर्शों की याद कराते रहना चाहिए ताकि उन आदर्शों की छाप उनके मन पर पड़ती

रहे और वे भी अपने जीवन को आदर्शमय बना सकें। महापुरुषों के कार्य महान होते ही हैं। व्यवहार की छोटी-छोटी बातों जैसे—बड़ों का अभिवादन, सम्मान, विनम्रता, उदारता आदि सद्गुणों को जीवन में आदर देने लगते हैं तो हमारा जीवन क्रमशः ऊपर उठने लगता है। एक उदाहरण याद आता है। घटना प्रीतम नगर इलाहाबाद की है, जब पूरा संत समाज प्रीतम नगर में निवास करता था। एक दिन दो संत सायं टहलने निकले थे। कुछ दूर जाने पर एक मकान के दरवाजे पर दो छोटे-छोटे बालक साफ-सुथरे कपड़े पहने खड़े थे। जिनकी उम्र उस समय लगभग छः से आठ वर्ष रही होगी। वे दोनों बच्चे संतों को देखकर दोनों हाथ जोड़ कर कहने लगे 'श्रीमान जी, नमस्ते'।

बच्चों का ऐसा अभिवादन संतों के मन को भा गया। वे दोनों ठिठक गये और वहीं रुककर उनसे पूछ पड़े—बच्चो! तुम्हारा नाम क्या है? बच्चे फिर दोनों हाथ जोड़कर बोले—श्रीमानजी, मेरा नाम केशव है, श्रीमान जी, मेरा नाम रमेश है। कितना सुंदर आदर्श उन बच्चों का रहा है तभी तो हम आज भी उनको याद कर रहे हैं। उनके माता-पिता भी धन्यवाद के पात्र हैं जिन्होंने अपने बच्चों को ऐसा उत्तम आदर्श सिखाया। क्या आप नहीं चाहते कि आपके बच्चे भी ऐसा आदर्श प्रस्तुत करें? यदि ऐसा चाहते हैं तो आप स्वयं लोगों से अच्छा व्यवहार करें तथा नयी पीढ़ी को भी उच्च आदर्शों से संस्कारित करते रहें। यह जिम्मेदारी माता-पिता एवं पूरे परिवार की है। आप अपनी संतान को संस्कारित करते हैं तो कुछ प्रतिशत बच्चों का उपकार करते हैं बाकी अधिकतम तो आप अपने जमा खाता में डिपाजिट करते हैं भविष्य के लिए। जब वह बच्चा जवान होकर घर का मालिक बन जायेगा तब आपकी खातिरदारी करेगा।

आप बच्चों को उपदेश देकर समझाते हैं उसे वह ध्यान से सुनता है उसका उन पर प्रभाव पड़ता है, किन्तु आप स्वयं उसे आचरण करके दिखाते हैं उसका प्रभाव उनके मन पर और अधिक पड़ता है। आप बच्चों से कहते हैं कि माता-पिता की सेवा करनी चाहिए किन्तु इसका प्रभाव बच्चों पर तब पड़ेगा जब आप स्वयं अपने माता-पिता की सेवा करते होंगे। आप अपने

माता-पिता या सास-श्वसुर की अवहेलना, तिरस्कार करते हैं तो आगे आपका भी स्वागत इसी ढंग से होगा। सद्गुरु कबीर के शब्दों में कहें तो—

कबीर कमाई आपनी, निष्फल कभी न जाय।

बोया पेड़ बबूल का, आम कहां से खाय

आप खेत में जैसा बीज बोयेंगे वैसी ही फसल काटने को मिलेगी। आप अपने माता-पिता को प्रणाम करते हैं तो आपके बच्चे आपको प्रणाम करेंगे। आप सुबह जल्दी सोकर उठ जाते हैं तो आपके बच्चे भी जल्दी उठ जायेंगे। आप देर रात तक टी.वी. देखेंगे तो इसी की नकल बच्चे भी करेंगे। बच्चों का मन कोमल पौधे की तरह होता है। कोमल पौधे को आप सीधा रखना चाहते हैं तो पेड़ सीधा रहेगा और किसी दिशा में झुकाना चाहेंगे तो वैसा झुका भी सकेंगे। प्रणाम की बात आयी तो एक संस्मरण याद आ गया। अगस्त 2006 की बात है। सूरत (गुजरात) में डॉ. श्रीमती नीता गोहिले का दांत का दवाखाना है। वे बहुत ही सरल, सहज और शांत स्वभाव की गंभीर महिला हैं। एक संत को लेकर मैं उनके पास गया था। उन्होंने संत की सेवा की। तत्पश्चात कुछ धार्मिक चर्चा होने लगी। इसी दौरान उन्होंने कहा—महाराज! मैं आपसे फीस के रुपये नहीं लूंगी। भगवान का दिया मेरे पास काम भर का बहुत है। औरों से तो लेती ही हूँ। आप धर्म के काम में लगे हैं उसका कुछ हिस्सा हमें भी तो मिलना चाहिए। फिर उन्होंने बताया कि मैं जब घर से सुबह निकलती हूँ तो अपने पति और सास-श्वसुर के चरणों में प्रणाम करके चलती हूँ। मेरे पति भी जब अपने काम के लिए निकलते हैं तो वे भी रोज अपने माता-पिता को प्रणाम करके निकलते हैं। मेरे दो बच्चे हैं, दोनों पढ़ते हैं। वे भी अपने दादा-दादी का, अपने पिता और मेरा चरण स्पर्श कर स्कूल जाते हैं और स्कूल से आकर पुनः प्रणाम करते हैं

इसका इतना प्रभाव हुआ कि जब मैंने पहली बार हास्पिटल की शुरुआत की, मकान मालिक को किराया देने के लिए मेरे पास रुपये नहीं थे। मकान मालिक ने कहा—आप लोगों की सेवा कीजिए, जब हो जायेगा तब दे दीजिएगा। मैंने वैसा ही किया। लोग आते गये, गरीबों की मैंने निःशुल्क सेवा की, आज भी करती हूँ। अब मेरे

परिवार में कोई कमी नहीं है। मैं अपने बच्चों को यह भी समझाती हूँ कि जब दिनभर मेहनत करती हूँ तब कुछ रुपये मिलते हैं। इन रुपयों को अनावश्यक खर्च मत करना। इसका दुरुपयोग करोगे तो पछताओगे। हर्ष की बात यह है कि मेरे दोनों ही बच्चे समझदार हैं। वे इस बात को भलीभाँति समझते हैं और सदाचारी हैं।

आप जरा विचार करें क्या हम अपने मुँह से यह कह सकते हैं कि मैं अपने माता-पिता को रोज प्रणाम करता हूँ। यदि नहीं तो क्यों? फिर आप अपने बच्चों से ऐसी उम्मीद कैसे कर सकते हैं। जो आज चरण स्पर्श नहीं कर सकता, विनम्र नहीं हो सकता वह आगे भी ऐसा नहीं कर पायेगा चाहे आप उन्हें गीता, भागवत और रामायण की जितनी शिक्षा दे डालें। रामचरितमानस में श्री रामचंद्र जी के लिए कहा गया है—“प्रातःकाल उठ करि रघुनाथा। माता पिता गुरु नावहिं माथा”

जिस दिन मैंने डॉ. श्रीमती गोहिले की बातें सुनीं तो मुझे घोर आश्चर्य हुआ कि आज के कलियुग कहे जाने वाले आधुनिकता भरे युग में भी लोग ऐसा करते होंगे लेकिन उनकी बातों में कोई बनावटीपन नहीं था इसलिए विश्वास करना ही पड़ा। आप भी अपने माता-पिता की इस ढंग से सेवा करें ताकि आपके बच्चे भी आपको प्रणाम करें। इसकी शुरुआत आप आज से ही कर दीजिए।

7. सही जानकारी दें—बच्चों का मन कच्चा तो होता है, परन्तु आप उसे इतना कच्चा न समझ बैठें कि वे कुछ समझते ही नहीं। कई माता-पिता ऐसे होते हैं जो उनकी पीठ सब समय सहलाते रहते हैं। उनकी गलतियों पर धूल झोंकते रहते हैं। आगे चलकर वही धूल गहरी भूल साबित होती है और शूल बनकर जीवन भर पीड़ा देती है। इसलिए चाहे बच्चे की गलती हो या स्वयं मां-बाप की उसे दबाइये नहीं बल्कि मिटाइये। गलतियाँ दबाने योग्य नहीं हैं, मिटाने योग्य हैं। और यदि आप इसे मिटायेंगे नहीं तो ये आपके जीवन को ही मिटा देंगी। जिन गलतियों को दबा दिया जाता है वे बीज की तरह भीतर अंकुरित होकर और विस्तार के साथ बाहर आते हैं। किसी बच्चे से यदि भूलवश कोई गलती हो जाती है तो आप उसे छुपाइये नहीं, डांटिये नहीं। बल्कि उसे प्रेम से एकांत में समझाइये। डांटने से

उसके मन पर गलत असर हो सकता है। प्रेम से समझाने पर वह उस पर विचार करेगा, अपनी गलती पर ग्लानि करेगा और आपसे क्षमा मांगकर अपना सुधार करेगा।

आप अपने बच्चों को अपनी आमदनी का हिसाब बताइये और समझाते रहिए कि धन या रुपया कितनी मेहनत करने पर प्राप्त होता है। आपके ऐसा करने से वह फिजूल खर्च से बचा रहेगा। आप उसे बाजार या दुकान भेजते हैं तो लौटने पर हिसाब पूछें। आपके घर में मोबाइल या टेलीफोन है तो आप निरीक्षण करते रहिए कि इसका बच्चों के द्वारा अधिक प्रयोग तो नहीं किया जा रहा है। ऐसा आप तभी कर पायेंगे जब आप स्वयं संयमित प्रयोग करते होंगे।

कुछ परिवारों में माता-पिता की जबरदस्त लापरवाही होती है जिसके कारण बच्चों का स्वभाव, आचरण बिगड़ जाते हैं। जब बच्चे हाथ से निकल जाते हैं तब रोते हैं कि हमारे बच्चे इतने खराब निकले। कुछ परिवारों में ऐसा देखने को मिला कि सभी बच्चे गलत ठहरे। उनके हावभाव, रहन-सहन का ठिकाना न रहा। उनकी मां से पूछा गया—ऐसा क्यों हुआ। उस मां ने उत्तर दिया—साहेब! जब ये छोटे थे तब हम इन्हें छोटे समझकर इनकी सभी मांगों को पूरा करते रहे कि ये खुश रहें और पढ़े-लिखें। संपन्न परिवार था, किसी चीज की कमी न थी, जब थोड़ा और बढ़े तब जिद्दी स्वभाव के हो गये। जब ये कहे कि मां, आज खीर बननी चाहिए तो मुझे बनाना ही पड़ता था। आज हलुआ बनना चाहिए तो बनाना ही पड़ता था। यदि नहीं बनाती तो ये भोजन न करते, बरतन तोड़ते या दरवाजा पीटते। तब इनके पिता कहते—आखिर, इन्हीं लोगों के लिए तो हम कमाते हैं। ये कहते आज मुझे इतना रुपया चाहिए, दे देते थे या फिर ये स्वयं दुकान से निकाल लेते, पता भी नहीं चलता था कि कितना निकाला गया है। आखिर इसका परिणाम सामने है। न तो इन लोगों ने अपना भविष्य ही बनाया और न ही हमारी मान-मर्यादा, सम्मान का ख्याल रखा। इसी का दुख आज हम भोग रहे हैं। कुछ माता-पिता ऐसे भी होते हैं जो स्वयं अपने बच्चों के सामने अमर्यादित बात-व्यवहार करते रहते हैं। यह नहीं सोच पाते हैं कि इसका हमारे बच्चों पर

क्या प्रभाव पड़ेगा। इसी व्यवहार को देखकर बच्चे भी व्यसनी, विषयी हो जाते हैं। अतः सावधानीपूर्वक जीवन व्यवहार करें।

8. लड़का-लड़की को बराबर महत्व दें—हम कम्प्यूटर युग में जी रहे हैं जहां स्त्री-पुरुष मिलकर काम करते हैं। आज सब क्षेत्र सबके लिए खुला है। कोई भेदभाव नहीं है। फिर भी कुछ ऐसे क्षेत्र हैं जहां लड़के की तुलना में लड़कियों को हीन दृष्टि से देखा जाता है। देहातों में आज भी यही कहा जाता है कि लड़कियों को क्या पढ़ाना-लिखाना आखिर जीवनभर चूल्हा ही तो फूंकना है। किन्तु ऐसी बात नहीं है। लड़का हो या लड़की दोनों का बराबर महत्व है। किसी भी लड़की के मन में हीन भावना पैदा न करें, कि तुम तो अयोग्य हो। तुम्हारा भाई तुमसे सब तरह से बलवान तथा योग्य है। कोई छोटा-बड़ा नहीं है। केवल शरीर के आकार-प्रकार का अंतर है इसलिए दोनों की भिन्न मर्यादाएं हैं। दूसरे ढंग से देखें तो बालिका का महत्व समाज में बालकों की अपेक्षा अधिक है। क्योंकि वे मां बनती हैं, और अपने बच्चों को संस्कारित करती हैं। उन्हें पाल-पोषकर बड़ा बनाती हैं। स्वामी दयानंद सरस्वती ने एक जगह लिखा है—यदि आप एक बालक को शिक्षित करते हैं तो केवल एक व्यक्ति को शिक्षित करते हैं पर आप यदि एक बालिका को प्रशिक्षित करते हैं तो पूरे परिवार को शिक्षित करते हैं। बालिका संस्कारी है तो उसके बच्चे संस्कारित होंगे तथा वे अपने बच्चों को संस्कारित करेंगे अतः पूरा परिवार संस्कारित होगा।

9. बच्चों के मन में दहेज का जहर न घोलें—दहेज के कारण कितनी युवतियां जलाई जाती हैं। कितनों का घर बेघर हो जाता है। कितनी आत्महत्या तक कर लेती हैं। पहले सोचा जाता था कि शिक्षा का विकास होगा तो दहेज घटेगा किन्तु उल्टा ही हुआ। दहेज बढ़ा है लेकिन घटा नहीं। चार फरवरी 2011 को एक युवती ने फोन से बताया कि दहेज कम मिलने के कारण ससुराल वाले प्रताड़ित करते और मारते-पीटते थे। छः महीने ही ससुराल में रह पायी फिर त्रस्त होकर नैहर आ गई। आप कुछ रास्ता बताइए। मैंने कहा—आप पढ़ी-लिखी हैं। अपने कदमों

पर खड़ी हों और ठीक से मेहनत करिये, अपना कैरियर बनाइए फिर विवाह के लिए बाद में सोचना। तरस आता है सुसभ्य कहलाने वाले भारतीय समाज पर। इसी दहेज राक्षसी के कारण ही भारतीय समाज में भ्रूणहत्या बढ़ी है। जिससे स्त्रियों की संख्या निरंतर घट रही है। अब भारतीय समाज में प्रति एक हजार पुरुषों के पीछे नौ सौ, नौ सौ पच्चीस स्त्रियां हैं। अल्ट्रासाउंड, सीटी स्कैन आदि के जरिए चलने वाले भ्रूण-लिंग-परीक्षण को रोका नहीं गया तो कुछ समय पश्चात स्त्रियों की संख्या अत्यंत कम हो जायेगी।

भारत ही एक ऐसा देश है जहां बचपन से ही दादा-दादी या अन्य रिश्ते वाले बच्चों से मजाक के तौर पर कहते रहते हैं कि तुम्हारी शादी जब होगी तो तुम्हारी पत्नी बहुत दहेज लेकर आयेगी, उसमें सोने-चांदी के गहने, गाड़ी-मोटर, सोफासेट होंगे और वह तुम्हारी सेवा जीवनभर करती रहेगी। ऐसी बातें मासूम बालकों के मन में घर कर जाती हैं। और मन-ही-मन ऐसा ही सपना देखने लगते हैं। ऐसे ही लड़कियों से कहा जाता है कि तुम तो यहां के मेहमान हो, तुम्हारा घर कहीं और है। तुम जहां जाओगी वहां संपन्न परिवार होगा, गाड़ी-मोटर, नौकर-चाकर होंगे। तुम वहां जाकर केवल सुख भोगोगी। ऐसी बातें मन में गड़ी रह जाती हैं और जब ऐसा नहीं होता है तब वे इन सपनों को अपने बच्चों व पोतों के जीवन में देखना चाहते हैं। दहेज के नाम पर आज समाज-परिवार में जो दुर्दशा देखने को मिलती है सोचनीय है। अतः अपने बच्चों के मन-मस्तिष्क तक दहेज रूपी जहर आने ही न दीजिए ताकि स्वस्थ मानसिकता का विकास हो सके।

10. कुसंग से दूर रखें—जहां जाने से मन में अशांति, इन्द्रियों में हलचल, स्वभाव में विकृति पैदा हो वह कुसंग है। आप स्वयं कुसंग से दूर रहें तथा अपने बच्चों को भी इनसे बचाये रखें तथा सुसंग में लगायें। ध्यान, मनन, चिंतन, एकाग्रता के अभ्यास के द्वारा अपने को शोधें तथा अपने बच्चों में भी इसका उपदेश करें। कहा जाता है दुनिया में जापान एक ऐसा देश है जहां लोग सबसे ज्यादा प्रसन्नचित्त दिखाई पड़ते हैं। उन लोगों से पूछा गया कि आपकी प्रसन्नता का राज क्या है?

उन्होंने कहा—वहाँ छोटे-छोटे बच्चों को बचपन से ही ध्यानाभ्यास कराया जाता है। और मां-बाप बचपन से यह सिखाते हैं कि जब भी क्रोध आने लगे, मन अशांत हो, चिंतित हो तो गहरा श्वास लेना और श्वास पर ध्यान केन्द्रित करना। इससे पूरे देश में बुनियादी फर्क हुआ है। हम भी नित्य ध्यान, सत्संग करें ताकि हमारा तन-मन सब समय स्वस्थ व प्रफुल्लित हो सके।

. आज की शिक्षा प्रणाली—इस प्रसंग की शुरुआत उस दिन से करना चाहता हूँ जिस दिन मैं कालेज के दहलीज पर कदम रखा था। सन् 1997 की बात है। मैं बी.ए. प्रथम वर्ष का छात्र था। सबसे प्रथम दिन मैं क्लास में बैठा था। अर्थशास्त्र का पीरियड लगने वाला था। कुछ समय पश्चात अर्थशास्त्र (Economics) के विख्यात शिक्षक श्रीमान डॉ. अनंत दीक्षित जी क्लास में आये। आपके आते ही क्लास एकदम शांत हो गया। गंभीर मुद्रा में पहला वाक्य आपके श्रीमुख से निकाला “What is Personality” (व्यक्तित्व क्या है)? थोड़ी देर बाद आपने फिर कहा—आपका पढ़ने का उद्देश्य क्या है? शिक्षा का उद्देश्य क्या है? कुछ विद्यार्थियों से इसका जवाब पूछा गया। अंत में उन्होंने कहा—शिक्षा का उद्देश्य नौकरी करना नहीं है। सफल व्यापारी बन जाना नहीं है। इसी प्रकार डॉक्टर, इंजीनियर, राजनेता हो जाना भी नहीं है। “शिक्षा का उद्देश्य है व्यक्तित्व का विकास करना।”

यह कालेज जीवन का प्रथम दिन था और उस सर के मुख से निकला प्रथम वाक्य आज तक भुलाये नहीं भूलता है। समय-समय से याद आ ही जाता है। और इस बात पर सोचने के लिए मजबूर होना ही पड़ता है कि हमारा उद्देश्य क्या है? खास बात यह है कि कालेज के एक शिक्षक ने व्यक्तित्व के विषय में कहा था।

शिक्षा से ही व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास और निर्माण होता है। शिक्षा से ही जीवन यथार्थ जीवन बनता है। हमारी बौद्धिक क्षमता का विकास भी इसी से होता है। जीवन निर्माण की कला प्राचीन समय में हमारे ऋषि-मुनियों द्वारा गुरु आश्रमों में ही सिखाया जाता था। अब आज की शिक्षा पद्धति में सच्चरित्रता,

नैतिकता, धार्मिकता का अभाव हो गया है। आज के विद्यार्थी, शिक्षक और अभिभावक सबके सब यही चाहते हैं कि कैसे हम या हमारे बच्चे अधिक से अधिक डिग्री हासिल करें। ज्यादा से ज्यादा ध्यान परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लिए दिया जाता है, यथार्थ योग्यता बढ़ाने के लिए नहीं। अब व्यक्तित्व निर्माण की बात भूलती जा रही है। अब किसी तरह परीक्षा पास करना, डिग्री हासिल करना और नौकरी पा जाना ही उद्देश्य होता जा रहा है। स्कूलों में भूगोल, इतिहास, विज्ञान, इंजीनियरिंग, डॉक्टरी की पढ़ाई होती है जो कि पढ़कर निकलने के पश्चात प्रायः भूल-सा जाता है क्योंकि व्यावहारिक धरातल पर इन सबका प्रयोग कम हो पाता है। हर व्यक्ति को समाज में ही जीना होता है। इसलिए हमारी शिक्षा पद्धति में ऐसे विषयों का समावेश होना चाहिए जिससे सामाजिक गुणों का विकास हो सके जैसे दया, क्षमा, सहिष्णुता, नैतिकता, सच्चरित्रता, धार्मिकता, राष्ट्रीयता आदि। सामाजिक गुणों के विकास की सीख बचपन से ही दी जायेगी तो हर व्यक्ति अपने कर्तव्यों को समझ पायेगा और सच्चा इंसान बनेगा। सभी शिक्षकों को प्रोफेसर डॉ. अनंत दीक्षित जी से प्रेरणा लेनी चाहिए और अपने क्लास में व्यक्तित्व-निर्माण, कर्तव्य, सच्चरित्रता आदि विषयों पर समय-समय से चर्चा करते रहना चाहिए।

मकान में नींव ही आधार होती है। नींव जितनी गहरी व मजबूत होती है उतना ही मकान पक्का, मजबूत तथा दीर्घजीवी होता है। ऐसे ही मानव जीवन के भविष्य हैं बच्चे और उनकी पूंजी है शुभ संस्कार। जब बच्चों में शुभ संस्कारों के बीज बचपन से ही पड़ते रहेंगे तभी मानव समाज रूपी वृक्ष की सभी डालियां मजबूत होंगी और उनमें सद्गुणों के सुगंधित फूल और फल की आशा की जा सकेगी। हम भविष्य को संवारना चाहते हैं, सुखद व स्वस्थ समाज की स्थापना करना चाहते हैं तो इसके लिए बच्चों को अच्छे ढंग से संस्कारित करें तथा ऐसी संस्थाओं, संगठनों का निर्माण करें जो कि बच्चों को संस्कारित करने में हमारा सहयोग कर सकें।

←... परमार्थ पथ ...→

मन मस्त हुआ तब क्यों बोले

कुछ न चाहना अमृत है। देह-निर्वाह तो परिश्रम और प्रारब्ध से चलता है। उसके लिए चाहना करने की आवश्यकता नहीं रहती। देह-निर्वाह के बाद आध्यात्मिक उन्नति के लिए साधना करना चाहिए और वह साधना है कुछ न चाहना। निर्वाह अवस्था ही मोक्ष एवं परमशांति-पद है। रोटी-लंगोटी परिश्रम-प्रारब्ध से मिलती रहेगी, अविचल शांति निर्वाह होने पर ही होगी। जिस संसार में कोई मेरा नहीं है और कुछ मेरा नहीं है, सारा ऐश्वर्य पानी के बुलबुले की तरह बनने-बिगड़ने वाला अंततः धूल-रेत है, उसमें किसकी चाहना की जाये? मैं पूर्ण तृप्त स्वरूप हूँ, फिर क्या चाहूँ? मैं शांति के अथाह सागर में निमग्न हूँ।

* * *

मन को इधर-उधर बहकने न दो। बस, इतनी ही साधना है। जिसका मन भटकता नहीं है, वह धन्य है। इस सारहीन, नश्वर तथा छूटनेवाले संसार में मन कहाँ भटकाया जाये? सदा स्थिर आत्म-अस्तित्व में ही निमग्न रहना सच्ची समझदारी है। अहंकार के कारण मन भटकता है। जैसे-जैसे विवेक द्वारा अहंकार गलता जाता है, वैसे-वैसे मन स्थिर होता जाता है। दृढ़ विवेक एवं वैराग्य की अग्नि से जिनकी समस्त सांसारिक कामनाएं भस्म हो गयी हैं और देहाभिमान पूर्ण नष्ट हो गया है, उनका मन उनके स्ववश हो जाता है। उन्हें अविचल समाधि लगती है। उन्हीं को शाश्वत शांति मिलती है जो जीवन की सर्वोच्च उपलब्धि है।

* * *

तुमने अनादिकाल से क्या किया है? देहाभिमानी बनकर काम-वासना और भोगों में पचता रहा है; धन का लोभ किया है; प्रतिकूलों पर क्रोध किया है; प्रतिक्रिया में जलता रहा है; ईर्ष्या-द्वेष, मत्सर, असूया, तृष्णा-आशा में उद्विग्न रहा है; कुल मिलाकर सदैव

मानसिक आग में जलता रहा है। अब इस जीवन में, इस समय में तुम्हें सारे मानसिक विकारों को सर्वथा छोड़कर निर्मल और निर्ग्रथ मन से जीना है। और यह तभी होगा जब सारा अहंकार छोड़कर अपने मन को मार लोगे। याद रखो, तुम्हें दूर के लोग, तुम्हारे पास के लोग बुरा मान सकते हैं और बुरा कह सकते हैं। परंतु जब इन स्थितियों में तुम पूर्ण निर्विकार रह सकोगे तब आत्मविजयी बन सकोगे। जब तुम अपने निकट के लोगों की गाली और अपमान निर्विकार होकर सह लोगे, तब मुक्ति में ठहर सकोगे।

* * *

मेरा अस्तित्व अकेला है। इस तथ्य का सदैव स्मरण रखना और अपने कैवल्य-भाव में जीना जीवन का फल है। इन छूटने वाले दृश्यों में मोह करने का कोई मतलब नहीं है। मोह, प्रेम, अनुराग तो आत्मा में ही करना चाहिए। जो वस्तुतः परात्मा एवं परमात्मा है। यह आत्मा ही परम सत्ता है। यही मेरे साथ है। मैं ही मेरे साथ है, अतः आत्मरमण परमपद की प्राप्ति है।

* * *

साधक प्रलोभन की वस्तुओं का संग्रह न करे। जीवन-निर्वाह सादगी और संयम से करे। शरीर से लेकर जहाँ तक चारों तरफ का पसारा है, निर्मित पदार्थों का विस्तार है जो क्षण-क्षण बदलने वाला है और अंततः अदृश्य हो जाने वाला है। इसलिए शरीर से संसार विस्तार तक कहीं मोह न करे। जिनमें हम आकर्षित होते हैं वे क्षणभंगुर हैं। बाहर मन अटक जाने से वह अंतर्मुख और शांत नहीं हो सकता। इसलिए साधक थोड़ा भी असावधान न हो, दृश्यों में मोह न करे।

* * *

याद रखो, भोजन सुपाच्य, शुद्ध, सात्विक और संतुलित लो। जमकर कभी न खाओ, अपितु थोड़ा कम खाओ। 'घुटघुर' खाने वाला सदैव सुखी रहता है। अवधक्षेत्र में 'घुटघुर' का अर्थ होता है 'कम'। इसी प्रकार कम लोगों से मिलना, कम बात करना, कम व्यवहार रखना शांति का कारण है। आज-कल में शरीर

समाप्त होने वाला है। इसलिए सारी वासनाएं समाप्त करके रखो। अंतरात्मा शांति चाहती है, परंतु बाहरी प्रलोभन में पड़ने से शांति खो जाती है। बोध-वैराग्य में निपुण साधक को चाहिए कि वह सर्वत्र असावधानी का त्याग करे और बाह्य प्रपंच से अपने को छुड़ाकर निरंतर अंतर्मुख रहने के लिए प्रयत्नवान रहे। जिसमें हमारा मन प्रलुब्ध होता है, वह क्षणिक है। स्थिर तो आत्म-अस्तित्व है। केवल जठराग्नि शांत करने के लिए खान-पान लो और तृष्णाग्नि को बुझा दो।

* * *

शरीर आज-कल में छूट जाने वाला है। उसके छूट जाने पर सारा दृश्य-संसार छूट जायेगा, फिर कभी भी इसका स्मरण नहीं होगा। इस बात पर ध्यान दो और आज ही से दृश्य-संसार का विस्मरण करो। समय-समय से मन को समेटकर जड़-दृश्य को भूल जाओ। पूर्व की घटित घटनाएं मरी हुई हैं, जो तुमने आज तक देखा, सुना और भोगा है, वे भी मरे हुए हैं; अतएव उनके स्मरणों में मत पचो। अपितु “साधो, ये मुरदों का गांव” इस सद्गुरु-वचन पर ध्यान दो और देखना, सुनना तथा जानना बंद कर दृश्यलीनता रूपी समाधि का अभ्यास करो। आत्मलीन-भाव में सदा रहो। तुम्हारे पास केवल तुम ही रहोगे, अन्य कोई और कुछ नहीं रहने वाला है। अतएव असंग, असंग, असंग।

* * *

मन मिथ्या भ्रम में रहता है। न शरीर रहेगा और न शरीर संबंधी प्राणी, पदार्थों और परिस्थितियों का संबंध रहेगा। शरीर छूट जाने पर न जड़-दृश्य का स्मरण एवं जानना-सुनना रहेगा और न उसका किसी प्रकार का संबंध रहेगा। अतएव मुझ शुद्ध अविनाशी चेतन का किसी से संबंध नहीं है। देह-इंद्रिय-मन साथ होने से जीव जड़-दृश्य का द्रष्टा है। देह समाप्त होने पर जीव द्रष्टा भी नहीं रहेगा, किंतु केवल सत्ता मात्र रहेगा; और यह स्थिति अति शीघ्र आने वाली है। ऐसे क्षणिक संबंध में किस वस्तु एवं बात का अहंकार किया जाये? अतएव सारा संबंध मिथ्या है। इस मिथ्या एवं क्षणिक

संबंध में किसी प्रकार की अहंता-ममता-मोह-कल्पना करना केवल भ्रान्ति है, अज्ञान है। अतः सदैव असंग, निराधार भाव में ही रहना चाहिए।

* * *

कम खाना अमृत है। कम बोलना अमृत है। कम सोचना अमृत है। कुछ न सोचना महा अमृत है। सच्चा ध्यान, समाधि एवं विपश्यना है कुछ न सोचना। अंततः शरीर छूट जाने पर कुछ न सोचने की स्थिति आ जायेगी। शरीर में रहते-रहते समय-समय से कुछ न सोचने की स्थिति में रहना सच्ची साधना है। आत्मा तो असंग है। देह-इंद्रिय-मन के प्रपंच में पड़कर देखना, सुनना, सोचना अनादि का कूड़ा-कचड़ा है। हम जो कुछ देखते-सुनते और सोचते हैं जड़-दृश्य ही तो रहता है। दृश्य विजाति है, विनश्वर है, छूटने वाला है; अतएव उससे तादात्म्य करना दुख पैदा करना है। तादात्म्य अपने आपसे ही करना चाहिए, जो कभी छूटने वाला नहीं है दृश्य से तादात्म्य मोह उत्पन्न करता है जो दुख देता है। असंग, कैवल्य भाव ही परम शांति एवं मोक्ष है।

* * *

चारों तरफ दृष्टि डालने पर कहीं कुछ मेरा नहीं लगता है। शरीर से संसार तक धूल-मिट्टी, विजाति, परिवर्तनशील और छूटने वाला दिखता है। यही दृष्टि निरंतर बने रहना जीवन्मुक्ति है। अहंता-ममता का पूर्ण त्याग ही तो मुक्ति है। स्वरूपबोध हो जाने के बाद जब तक शरीर रहता है, तब तक प्राणी-पदार्थ और परिस्थितियों का संबंध होता है, और इसी में राग और द्वेष बनने की संभावना रहती है। इसी में अपने को राग-द्वेष से बचाये रखना मुख्य साधना है। कोई भी संबंध वर्तमान में सत लगने लगता है, जबकि वह क्षणिक है। कोई भी संबंध सच नहीं है, अपितु असंबंध ही सच है। इस असंबंध, असंगता एवं कैवल्य को निरंतर साधे रहना साधक की सावधानी है। हरक्षण अहंता-ममताशून्य रहना जीवन्मुक्ति है।

बीजक चिंतन

निजस्वरूप-स्थिति ही परम प्राप्तव्य है

शब्द-

कहहु हो अम्मर कासों लागा, चेतनहारा चेत सुभागा
अम्मर मध्ये दीसे तारा, एक चेता एक चेतवनहारा
जो खोजो सो उहवाँ नाहीं, सो तो आहि अमरपद माहीं
कहहिं कबीर पद बूझै सोई, मुख हृदया जाके एकै होई

शब्दार्थ—अम्मर=अविनाशी चेतन। लागा=
आसक्त होना। चेतनहारा=चेतनेवाला, ज्ञानवाला।
सुभागा=भाग्यवान। अम्मर=आकाश। तारा=तारे,
नक्षत्र, सितारे। उहवाँ=विजाति में, जड़ में, आकाश में।
अमरपद=चेतनस्वरूप, आत्मस्वरूप। पद=निजस्वरूप
का विषय।

भावार्थ—कहो, हे अविनाशी चेतन! तू किसमें
आसक्त हो रहा है! तू जिसमें आसक्त हो रहा है, वह
नाशवान है और तू अविनाशी है। हे सौभाग्यशाली
ज्ञानवान चेतन! तू मोह-नींद से जग जा! जैसे
सारे ज्योतिपिंड तारे आकाश के भीतर दिखते हैं, वैसे
सारे ज्ञान-विज्ञान तेरे अन्दर दिखते हैं। सभी मनुष्य
ज्ञानस्वरूप हैं, बस, अन्तर इतना ही है कि एक जगने
वाला एवं ज्ञान की प्रेरणा लेने वाला शिष्य है तथा दूसरा
जगाने वाला ज्ञानप्रेरक गुरु है जिस परमशांति एवं
परमविश्राम को खोज रहे हो वह न विजाति विषयों में
है, न आकाश में है, न आकाश में बिखरे किसी जड़-
पिंड में है; वह तो तुम्हारे अविनाशी चेतनस्वरूप में
है कबीर साहेब कहते हैं कि निज अविनाशी
चेतनस्वरूप एवं आत्मपद को वही समझ सकता है
जिसके वाणी और मन में एक ही सत्य समाया
हो

व्याख्या—मनुष्य का शरीर तो नाशवान है, परन्तु
इसमें रहने वाला चेतन अविनाशी है। यह अविनाशी
चेतन ही व्यक्ति का निजस्वरूप है। परन्तु वह इस तथ्य
को नहीं समझता। वह अपने अविनाशी चेतनस्वरूप में
न रमकर जड़ विजाति देह, गेह, प्राणी, पदार्थों एवं
विषयों में रमता रहता है। जीव हर समय अपने आप
को भूलकर अपने से भिन्न छूटने वाली नाशवान वस्तुओं
में आसक्त होता रहता है। इसलिए सद्गुरु कहते हैं
“कहहु हो अम्मर कासों लागा” यहां वे संबोधन में ही
मानो हमें हमारे स्वरूप की याद दिला देते हैं कि तू
अविनाशी है और जिसमें तू लग रहा है, जिसमें आसक्त
हो रहा है वह नाशवान है। साहेब कहते हैं कि हे
अविनाशी! तू किसमें मोह कर रहा है! राग करना या
द्वेष करना यही संसार में लगना है। हम जिन वस्तुओं
को लेकर राग-द्वेष करते हैं वे क्षणभंगुर एवं नाशवान
हैं। नाशवान वस्तुओं के लिए मुझ अविनाशी का
विचलित होना मेरा घोर अज्ञान है। मनुष्य का चित्त
विषयों में निरन्तर भटकता रहता है। वह अपने स्वरूप
के अज्ञानवश उन्हीं का निरन्तर चिन्तन करता रहता है
जो क्षण-क्षण छूटने वाले हैं। ये शरीर-संसार जीव के
कभी नहीं हो सकते, परन्तु यह इन्हीं के राग-द्वेष में
सदैव पचता रहता है। बड़े-बड़े अहंकारी राजे-महाराजे
सब कुछ यहीं छोड़-छोड़कर चले गये, फिर भी हमारी
आंखें नहीं खुल रही हैं। अति प्रिय मानी गयी देह तक
जीव के साथ नहीं जाती, फिर हम किसका अहंकार कर
रहे हैं!

“चेतनहारा चेत सुभागा” सद्गुरु कहते हैं कि हे
सौभाग्यशाली मनुष्य! तू ज्ञानस्वरूप है, जागनेवाला है।
तू अपने आप में जग जा! छोड़ दे सारे छूटने वाले
प्राणी-पदार्थों का मोह। जीव का मानव-शरीर में आना
ही उसका सौभाग्य है; क्योंकि इस शरीर में विवेक-
साधन है। यह साधन अन्य योनियों में नहीं है। जीव
मानव चोला को पाकर भी अविवेक में डूबा रहे, इससे
बड़ा प्रमाद और क्या होगा! साहेब याद दिलाते हैं कि हे
चेतन! तू मानव-शरीर में रहने के कारण सौभाग्यवान
है। तू आज मोह-माया को छोड़कर सावधान हो जा।

“अम्मर मध्ये दीसे तारा” पहली पंक्ति का ‘अम्मर’ शब्द अविनाशी चेतन के अर्थ में था। परन्तु इस पंक्ति का ‘अम्मर’ शब्द आकाश के अर्थ में है। सारे तारे आकाश में होते हैं। यह कल्पना ही व्यर्थ है कि कोई तारा आकाश के बाहर भी होगा। आकाश का अर्थ है खाली जगह, शून्य। शून्य में, अवकाश में ही तो सारे पदार्थ रहते हैं। इसलिए समस्त जड़ वस्तुएं आकाश में रहती हैं। इसमें यह भाव छिपा है कि इसी प्रकार सारा ज्ञान-विज्ञान जीव में रहते हैं। यह चेतन ही तो ज्ञान-विज्ञान का आधार है। जीव को हटा देने पर ज्ञान-विज्ञान का कोई आधार नहीं रह जायेगा।

“एक चेता एक चेतवनहारा” मानव से कीट तक सभी देहों में रहने वाले जीव चेतनस्वरूप हैं। मूलतः सब ज्ञानस्वरूप हैं। परन्तु मानव में विवेक है, इसलिए विशेष ज्ञानोदय यहीं हो सकता है। सभी मानव में विवेक-शक्ति है। उनमें अन्तर इतना ही होता है कि एक चेतता है दूसरा चेतता है, एक जागता है तथा दूसरा जगाता है। जो जागना चाहता एवं जगता है वह शिष्य कहलाता है और जो जगाता है वह गुरु कहलाता है। हर क्षेत्र में जगने-जगाने वाले होते हैं। एक सीखता है दूसरा सिखाता है, एक पढ़ता है दूसरा पढ़ाता है, एक बोध लेता है दूसरा बोध देता है, एक शिष्य कहलाता है दूसरा गुरु कहलाता है, परन्तु वे सब मूलतः एक ही समान चेतन होते हैं। गुरु-शिष्य में मौलिक अन्तर नहीं है। हर जीव में गुरुत्व है, एक-दूसरे द्वारा उसका उद्घाटन होता है। ज्ञान की पूर्ण दशा प्राप्त हो जाने पर गुरु तथा शिष्य दोनों समान स्थिति को प्राप्त हो जाते हैं। देह व्यवहार में उनकी गुरु-शिष्य मर्यादा रहती है, परन्तु ज्ञान तथा स्थिति में दोनों समान स्तर के हो जाते हैं। इस प्रकार सब जीव ज्ञाननिधान हैं।

“जो खोजो सो उहवाँ नाही” तुम जो खोजते हो वह वहां नहीं है। जीव क्या खोजता है? जीव खोजता है परम विश्राम, परम शांति। परन्तु वह वहां नहीं है। ‘वहां’ या ‘उहवाँ’ का क्या भाव है? व्यक्ति की अपनी चेतना से, अपनी आत्मा से जो कुछ अलग है वह

‘उहवाँ’ है, उससे दूर है। आकाश में किसी स्वर्ग की कल्पना, अपनी आत्मा से अलग किसी परमात्मा की कल्पना या संसार के किसी प्राणी-पदार्थ, भोग-वस्तु, पद, अधिकार, मान, पूज्यता, प्रतिष्ठा आदि में परमविश्राम एवं परमशांति खोजना महान भूल है। साहेब कहते हैं कि जो कुछ तुम्हारी चेतना से, तुम्हारे आपा एवं तुम्हारे स्व से अलग होगा वह तुम्हारा परम विश्रामस्थल, परमशांति का निधान बन ही नहीं सकता। तुम्हारी स्थिति पर-स्वरूप में कैसे हो सकती है! अपनी आत्मा से हटकर कहां शांति है! तुम अपने आप को छोड़कर बाहर स्थायी सुख-शांति खोजते हो, परन्तु ध्यान रहे, तुम बाहर कभी शांति न पाओगे। तुम्हें बाहर कहीं कोई न परमात्मा मिलने वाला है न अनंत शांति।

“सो तो आहि अमरपद माही” वह तो अमरपद में है। अनंत सुख, अनंत शांति, परमानंद, परमविश्राम, ब्राह्मीसुख, आत्यान्तिक सुख तुम जितने नाम लेते हो इन सबकी चरितार्थता स्वरूपस्थिति एवं पारखस्थिति में ही है। अमरपद तुम्हारी आत्मा है, तुम्हारा चेतनस्वरूप है। उसमें ही स्थिति होने पर तुम्हारे सारे दुखों का अन्त होगा और दूसरे शब्दों में तुम्हें परमशांति मिलेगी। यह निजस्वरूप की स्थिति ही मानो परमात्मा को, ब्रह्म को, खुदा को, गॉड को, परमपद को, परम निर्वाण को पा जाना है। क्योंकि निज चेतनस्वरूप के अलावा सब धोखा है, सब शब्दों का बवंडर है। इसलिए अपना परमविश्राम वहां न खोजकर अमरपद में खोजो। खोजना भी कुछ नहीं है, बाहर की सारी वासनाएं छोड़ दो, सारी दौड़ छोड़ दो और अपने चेतनस्वरूप में स्थित हो जाओ, बस, मानो सारा श्रेय मिल गया।

“कहहिं कबीर पद बूझै सोई, मुख हृदया जाके एकै होई।” सद्गुरु कहते हैं कि इस अविनाशी पद को, अमर स्थिति को वही समझ सकता है, वही इसमें विश्राम पा सकता है जिसके मुख में तथा हृदय में एक ही सत्य समाया हो। जैसी ज्ञान की बातें मुख से कही जाती हैं, वैसे जब मन में उनको धारण किया जाता है, तभी अमर स्थिति हो सकती है। यदि हम मुख से पाठ

करते हैं “काल न खाय कल्प नहिं व्यापै...अजरहम् अमरहम् अनाशी स्वरूपम्...मैं चेतन निष्काम स्वरूप” आदि और हमारे हृदय में भय, कामनादि द्वंद्व मचा रहे हैं तो यह “मुख कछु और हृदय कछु आना, सपनेहु काहु मोहि नहिं जाना” की बात हुई। हमें राग, भय, कामना, तृष्णा सारे मानसिक विकारों को सर्वथा छोड़ना होगा। मोक्ष मन की अनासक्ति है। अनासक्ति वैराग्य की पक्की दृढ़ता है। जिस संसार में हमें सब कुछ छोड़कर जाना ही है, वहां की वस्तुओं के लिए हमें क्या मोह, क्या राग तथा क्या द्वेष करना चाहिए! हमें एक दिन शरीर

छोड़कर अकेला हो जाना है, फिर शरीर के छूटने का भय क्यों! हम राग-द्वेष-विहीन, निर्भय, निष्काम, निर्द्वंद्व, तृष्णागत, परमशांति आदि बड़े-बड़े उच्च भाववाचक शब्दों को जबान से सैकड़ों बार दोहरा लेते हैं, फिर उनके भाव हृदय में क्यों नहीं धारण करते! किस कामना से हम अपने ज्ञान के अनुरूप आचरण नहीं करते! शांति से बढ़कर क्या लाभ हो सकता है! इसीलिए सद्गुरु कहते हैं कि स्वरूपस्थिति वही समझ सकता है, वही उसमें स्थित हो सकता है जिसमें कथनी-करनी की एकता होगी।

सुख से कैसे रहें?

लेखक—नारायण दास

“खखा चाहै खोरि मनावै” सद्गुरु कबीर साहेब इस पंक्ति में खोरि शब्द कहते हैं। खोरि कहते हैं गली को। गली उसे कहते हैं जो दो मकान के बीच में थोड़ी चौड़ाई का आने-जाने के लिए रास्ता होता है। परन्तु सद्गुरु कबीर साहेब गली का अर्थ मन और इंद्रियां करते हैं। क्योंकि मन और इंद्रियों से ज्ञान ग्रहण किया जाता है।

मकान में हवा तथा प्रकाश आने के लिए खिड़की रहती है जिससे कमरे का वातावरण शुद्ध हो। हवा और प्रकाश के साथ-साथ कमरे में धूल भी आ जाती है। इसलिए कमरे की सफाई की जाती है। ठीक इसी प्रकार मन और इंद्रियां ज्ञान ग्रहण करने के साधन हैं। ज्ञान के साथ-साथ ऊलजुलूल बातें भी ग्रहण कर लेते हैं जिससे मन अशांत हो जाता है। इसलिए सद्गुरु कबीर साहेब कहते हैं यदि तुम सुख तथा शान्ति चाहते हो तो सबसे पहले अपने मन और इंद्रियों को वश में करो और उसमें जो दोष-दुर्गुण हैं उन्हें त्याग करो।

मन और इंद्रियां मनुष्य के पास तो हैं ही मानवेतर खानी के प्राणियों के पास भी हैं। मनुष्य मन प्रधान है

तो मानवेतर प्राणी इंद्रिय प्रधान हैं। मनुष्य की विशेषता उसके मन से है तो मानवेतर प्राणी की विशेषता उनकी इंद्रियों से है। मनुष्य के पास विकसित मन है परन्तु मानवेतर प्राणी के पास विकसित मन नहीं है। विकसित मन न होने से वे ज्यादा नहीं सोचते हैं। वे अपनी आवश्यकता भर ही सोचते हैं। भूख लगी तो खाने के लिए सोचते हैं। खाने के लिए जो भी अनुकूल मिल जाये खा लेते हैं। यह नहीं सोचते हैं कि यह स्वादिष्ट नहीं है वह स्वादिष्ट है। यह विटामिन रहित है या वह विटामिन से भरपूर है। वे सब बड़े संतोषी होते हैं। इसलिए वे सदैव सुखी रहते हैं।

मनुष्य के पास विकसित मन है, इसलिए वह ज्यादा सोचता है। अपनी आवश्यकता और औकात से अधिक सोचता है। इसलिए मनुष्य सदैव दुखी रहता है। यही कारण है कि मनुष्य जीवन भर रोता है।

इस संसार में जन्म लेते ही रोने वाला, शिकायत करते-करते जीने वाला और पछताते-पछताते मरने वाला कोई प्राणी है तो वह है मनुष्य; जिसे सर्वश्रेष्ठ प्राणी कहा जाता है। जन्म लेते ही मनुष्य का बच्चा रोता

है। मानवेतर प्राणी का बच्चा नहीं रोता है। बच्चा का जन्म लेते ही रोना शुभ है। परन्तु जीवन भर रोना तो शुभ नहीं है। कितने लोग कहते हैं कि बच्चा जन्म लेते ही इसलिए रोता है कि वह घोषणा करता है कि मैं जीवन भर संसार में रोने के लिए ही आया हूँ। यह कहावत सच हो या झूठ, इतना तो सच है कि मनुष्य जीवन भर अपने तथा पराये के लिए रोता ही रहता है। कोई पत्नी के लिए रोता है तो कोई पत्नी से रोता है। कोई पति के लिए रोती है तो कोई पति से रोती है। कोई बेटा के लिए रोता है तो कोई बेटा से रोता है। कोई धन-पद के लिए रोता है तो कोई धन-पद से रोता है। कहां तक गिनाया जाये आदमी रोना अपने जीवन का लक्ष्य ही बना लिया है। परन्तु ज्ञानी नहीं रोता है।

मनुष्य जबसे जन्म लिया है तब से आज तक खा रहा है परन्तु सोचता है कि आगे क्या होगा? खाने को मिलेगा कि नहीं। जब से होश में आया है तब से आज तक कितने प्राणी-पदार्थ मिले और छूटे, कितने प्रिय-अप्रिय का संयोग और वियोग हुआ। जीवन में कितने हानि-लाभ हुए। कितनी समस्याएं आयीं और गयीं। कितने बैरी और मित्र बने परन्तु अब सोचता है कि आगे क्या होगा? यही रोने और दुख बढ़ाने का कारण है। जब यह सोच लिया जाता है कि आगे क्या होगा तो भय सवार हो जाता है। भय से ग्रसित मनुष्य को कुछ समझ में नहीं आता है। आपके विचार में ही सुख और दुख हैं। बस थोड़ी-सी दिशा बदल दीजिये। जब मन में आये कि आगे क्या होगा, तो उस समय यह सोचें कि जो होगा अच्छा होगा। आने वाली परिस्थिति को स्वीकार करने के लिए सदैव तैयार रहिये! बस देखिये, तुरन्त सुखी हो जायेंगे। भय दूर हो जायेगा। शरीर में ताजगी आ जायेगी। मन प्रसन्न हो जायेगा। नींद अच्छी आयेगी। पाचन अच्छा होगा। स्वास्थ्य अच्छा रहेगा। हर काम करने में मन लगेगा। “आपका विचार ही आपके भविष्य का निर्माण करता है।” बन्धुओ, इतना तो सच है कि जीवन में ऊंच-नीच स्थिति आती रहती है और आती ही रहेगी। शरीर है तो रोग भी लगेगा। परिवार है तो कभी कलह भी होगा। उनका सम्बन्ध है

तो उनसे वियोग भी होगा। जीवन में अनुकूलता और प्रतिकूलता धूप और छाया की तरह आने-जाने वाली हैं। इसलिए आने वाली परिस्थिति का सामना करने की तैयारी उसी प्रकार करें जैसे किसान बाढ़ आने के पूर्व ही अपनी खेत में मजबूत मेड़ बना लेता है।

आदमी का जीने का जो ढंग है उसमें कुछ सुधार की आवश्यकता है। आदमी या तो भूत में जीता है या भविष्य में। भूतकाल में जो सुख-सुविधा मिली उसकी याद करता रहता है। या भविष्य की सुख-सुविधा तथा आनन्द की कल्पना करता रहता है। भूत चाहे जितना भी अच्छा हो वह तो सपना हो गया है। उसकी केवल याद ही कर सकते हैं। (जैसे बूढ़े अपनी जवानी की याद करते रहते हैं) उससे कोई लाभ नहीं होगा। जैसे सपने की हानि और लाभ से जीवन में कोई फर्क नहीं पड़ता है। रही बात भविष्य की। भविष्य तो अभी बहुत दूर है। वह अभी तो केवल कल्पना है। वह मन के लड्डू बनकर दिख रहा है। भविष्य की कल्पना साकार हो जाये यह भी निश्चित नहीं है। कदाचित हो भी जाये तो क्या पता उसके योग्य खुद ही न रहें। क्योंकि शरीर की अवस्था सदैव ढलती ही जाती है। कितने माता-पिता बुढ़ापे में बेटा-बहू, नाती-पोते के साथ सुख से जीने की कल्पना करते हैं। परन्तु कल्पना एक दिन सपना बन कर गुजर जाती है। इसलिए भूत-भविष्य की कल्पना को छोड़कर वर्तमान में विचारपूर्वक जीना चाहिए। क्योंकि भविष्य जब भी आता है तो वर्तमान बनकर ही आता है। उस समय जब जैसा अवसर आये स्वीकार करना ही पड़ेगा। “परिस्थितियां जैसी भी हों उनको स्वीकार करने के अलावा आप कर ही क्या सकते हैं।” जीवन की सफलता रोने में नहीं, हंसने में है। हंसना ही जिन्दगी की मौज है। किसी ने बहुत अच्छा कहा है—

फूल बनकर मुस्कुराना है जिन्दगी।
मुस्कुराकर गम भुलाना है जिन्दगी
जीत कर खुश हो गये तो क्या,
हार में भी मुस्कुराना है जिन्दगी

दूसरी बात है शिकायत करते-करते जीना। संसार में बहुत खोजने पर कोई बिरला ही मनुष्य मिलेगा जो शिकायत रहित हो, नहीं तो सबके अन्तःकरण में एक नहीं अनेकों शिकायतें भरी रहती हैं। किसी के पास आप जाकर बैठ जाइये, उसके पास इतनी शिकायतें रहती हैं कि आप सुनते-सुनते थक जायेंगे। आपका सिर दुखने लगेगा। जाकर बैठें, थोड़ी देर बाद शिकायत शुरू हो जाती है। अमुक ने अपमान कर दिया। अमुक ने धोखा दे दिया। अमुक ने मार दिया। अमुक ने धन हड़प लिया। अमुक ने गाली दिया, अमुक ने निंदा किया। पत्नी ठीक नहीं है, पति ठीक नहीं है, भाई ठीक नहीं है, पिता ठीक नहीं है, पुत्र ठीक नहीं है, पड़ोसी ठीक नहीं है। ओह! न जाने कितनी बातें दिमाग में भरे रहते हैं। कब तक शिकायतें करते रहेंगे आप? शिकायत करना बन्द करें। शिकायत जीवन में सदैव अशांति पैदा करती है। बैर पैदा करती है। जहां व्यवहार है वहां अनेक प्रकार की समस्या आयेंगी ही आयेंगी। उनको लेकर यदि आप दुखी रहेंगे तो आप कभी सुखी नहीं होंगे। एक बूढ़ा एकान्त में अपने सिर पर हाथ रखकर चिंतित होकर उदास बैठा हुआ था। उनका मित्र संयोगवश उसी समय उनसे मिलने आया तो से पूछता है कि आप उदास होकर क्यों बैठे हैं? बूढ़ा ने कहा—क्या बताऊं? मेरे दुख की कोई सीमा नहीं है। मित्र ने कहा—आखिर है क्या बात? बूढ़ा ने कहा—जब मैं पुत्र था तो मेरे अनुकूल पिता नहीं मिले और जब मैं पिता बना तो मेरे अनुकूल पुत्र नहीं मिला। है न, बिना पैसे का लिया हुआ दुख! दुखी होने के लिए विशेष कोई मेहनत या खर्च नहीं करना पड़ता है। मान लीजिये कि पुत्र अनुकूल नहीं है, पत्नी अनुकूल नहीं है, भाई अनुकूल नहीं है, पिता अनुकूल नहीं है बस देखिये, दुख शुरू हो जायेगा। आपकी सोच में ही सुख और दुख है। दुनिया वैसी नहीं है जैसा आप सोचते हैं। दुनिया वैसी है, जैसे आप हैं। आदमी की सबसे बड़ी भूल यही है कि वह सबको अपने अनुकूल बनाना चाहता है। जो असंभव है। सबकी सोच अलग है, विचार अलग है। सबके जीने का ढंग अलग है। सब अपने ढंग से सोचना

चाहते हैं, जीना चाहते हैं तब फिर आपके मन के अनुसार कैसे हो सकते हैं? इसलिए जहां जिसके साथ रहें आपस में सामंजस्य बैठा कर जीना चाहिए। आपको उदाहरण बताऊं—श्रीराम और लक्ष्मणजी दोनों के स्वभाव में बड़ा अन्तर था। श्रीराम मितभाषी, सहनशील, गंभीर तथा शांत स्वभाव के परन्तु लक्ष्मणजी बड़े क्रोधी स्वभाव के थे। थोड़ी-थोड़ी बातों में सांप की तरह फुफकारने वाले। तुरन्त गुस्सा में आ जाते थे। कटु कहना शुरू कर देते थे। हथियार उठा लेते थे। फिर भी श्रीराम सदैव अपने साथ ही रखे रहे। लक्ष्मण जी श्रीराम की छाया की तरह सदैव साथ लगे रहे। इसलिए कोई भी आदमी भाई-भाई के बीच प्रेम की याद करते हैं तो श्रीराम और श्रीलक्ष्मण ही सबसे पहले नजर के सामने आते हैं।

कहने का तात्पर्य यह है कि आप जहां भी रहें व्यवहार में सामंजस्य बैठाकर रहें। एक-दूसरे के ऊंच-नीच को सहकर रहें। मान लीजिये कि आपके पति या पत्नी क्रोधी है तो आप क्या करेंगे? वस्तु से बदलने की चीज तो है नहीं। छोड़कर कहीं जाने में भी कुशलता नहीं है। रहना साथ में ही है। यदि साथ में रहना है तो सहना पड़ेगा और तब तक सहना है जब तक सामने वाले सहाने की चेष्टा करें। व्यवहार में थोड़ी कहा-सुनी हो ही जाती है। यदि उस समय सह लिया जाता है तो वह प्रेम में परिणत हो जाता है। एक घटना है। एक गांव में एक पति-पत्नी रहते थे। उनके घर से सदैव हंसने की आवाज आती थी। लड़ने-झगड़ने की आवाज कभी नहीं आती थी। गांव वाले बड़े आश्चर्य मानते थे। एक दिन कुछ लोग उन पति-पत्नी के बारे में चर्चा कर रहे थे कि अमुक के घर से कभी लड़ने-झगड़ने की आवाज सुनाई नहीं पड़ती है आखिर है क्या बात? एक आदमी ने कहा—हम लोग जिसके बारे में चर्चा कर रहे हैं देखो आ रहे हैं। उसको बुलाकर पूछ लिया जाये। उसको बुलाया गया और पूछा गया—हम लोगों के घर में रोज लड़ने-झगड़ने की आवाज आती रहती है। तुम्हारे घर से केवल हंसने की आवाज ही क्यों आती है? उसने बताया कि हंसी का कारण यह है कि मेरी

पत्नी बहुत गुस्सा करती है। गुस्सा में उसे जो सामने मिल जाये उसी को लेकर मुझे फेंक कर मारती है। उसका निशाना लग जाता है तो वह हंसती है और निशाना चूक जाता है तो मैं हंसता हूँ। यही हम दोनों के हंसने का कारण है। परन्तु आप यह मत समझिये कि हम दोनों में बैर बना है। हम दोनों बड़े प्रेम से रहते हैं। यह उदाहरण बताता है कि यदि आपके जीवन में कडुवाहट है तो उस कडुवाहट को भूलते हुए कैसे जीना है। आप अपने जीवन को प्रेममय बनाकर स्वर्ग भी बना सकते हैं और कलह करके नरक भी बना सकते हैं जिम्मेदारी आपकी है।

तीसरी बात है—पछताते-पछताते मरना। जिसकी कामनाएं बहुत होती हैं, वह आदमी सदैव असंतुष्ट रहता है। जो आदमी असंतुष्ट रहता है वह पश्चाताप करता हुआ मरता है। अपनी कामनाओं की याद करता रहता है। अमुक काम करना था नहीं कर पाया, अमुक चीज लेना था नहीं ले पाया। अमुक जगह जाना था नहीं जा पाया। मकान बनाना था नहीं बना पाया। गाड़ी खरीदनी थी नहीं खरीद पाया। अमुक मेरा बहुत प्यारा था उनसे नहीं मिल पाया आदि। आदमी यहां सौ साल नहीं, हजार साल भी जीवित रहने का अवसर पा जाये तो भी मन की कामनाएं पूरी नहीं होंगी। जब भोग की कामनाएं पूरी होती ही नहीं तो पूरी करने के चक्कर में नहीं पड़ना चाहिए। यदि कामनाएं पूरी करने के चक्कर में रहेंगे तो बहुत पछतायेंगे। इसलिए आप सुख से जीना या मरना चाहते हैं इसका एक ही उपाय है कि आप दिन भर जो भी काम करते हैं रात को जब आप बिस्तर पर सोने जाते हैं तो आप यही सोचें कि मेरा आज का सब काम पूरा हो गया। जीवन यदि कल रहेगा तो कल का काम कल हो जायेगा। यदि ऐसा आप रोज सोचकर सोयेंगे तो रात में नींद भी अच्छी आयेगी और अचानक मरने की नौबत आ जायेगी तो पछताना नहीं पड़ेगा और घबड़ाहट नहीं होगी।

आदमी चौबीस घण्टा में रोज - घण्टा मर जाता है। जब रात में सोता है तो मानो वह मर ही जाता है।

क्योंकि जब सोता है तो उसे शरीर तथा शरीर सम्बन्धित प्राणी-पदार्थ का कोई भान नहीं रहता है। सब भूल जाता है। इसलिए नींद को छोटी मौत कहा जाता है और मृत्यु को बड़ी नींद कहा जाता है। जो आदमी छोटी मौत (नींद) के समय संतुष्ट रहता है वह बड़ी नींद (मृत्यु) के समय भी संतुष्ट रहता है। जो आदमी हर प्रकार से संतुष्ट रहता है उसी की मौत अच्छी होती है। एक बात पर ध्यान दें, मौत जीवन का अन्त नहीं है, जीवन की शुरुआत है और जन्म जीवन की शुरुआत नहीं है जीवन का प्रवाह है। जन्म के पहले भी जीवन था और मरने के बाद भी जीवन रहेगा। यह अलग बात है कि साधक साधना करके मोक्ष प्राप्त कर लेता है। ऐसा बहुत कम होता है। बाकी तो जन्म-मरण के प्रवाह में ही बहते रहते हैं।

कबीर साहेब कहते हैं कि यदि तुम सुख-शांति चाहते हो तो सबसे पहले अपने मन और इन्द्रियों को वश में करो और उनमें जो दोष है, दुर्गुण है उसे त्याग करो। आदमी का मन सदैव बन्दर के समान चंचल बना है। उसकी चंचलता के कारण आदमी बहुत दुख पाता है। कहीं शांत होकर बैठ नहीं पाता है। एकान्त पाते ही न जाने कहां-कहां भटकता है। न जाने कैसी-कैसी बातों की याद दिलाता है। जिससे कोई मतलब नहीं उन बातों को भी याद दिलाता रहता है। न चाहते हुए भी याद दिलाता रहता है। इसलिए सद्गुरु कबीर साहेब ने मन के लिए बन्दर का उदाहरण दिया है—

बाजीगर का बाँदरा, ऐसा जीव मन के साथ।

नाना नाच नचाय के, ले राखे अपने हाथ

जैसे बाजीगर बन्दर को डंडा से पीट-पीटकर नाना प्रकार के खेल दिखाता है और सदैव अपने वश में रखता है वैसे ही यह मन जीव को अनेक प्रकार के प्रलोभन देकर भटकाता रहता है और सदैव अपने वश में रखता है। जिसके कारण मनुष्य मन से दुखी, चिन्त से अशांत और दिमाग से बोझिल बना रहता है। इसलिए मनुष्य का सबसे महत्त्वपूर्ण काम है मन को वश में करना और मन में जो अनेक प्रकार के दोष तथा दुर्गुण

हैं उनका त्याग करना। मनुष्य के मन में मुख्य दो दोष हैं एक राग और दूसरा द्वेष। जहां आदमी राग करेगा वहां अपना विवेक तथा शक्ति नष्ट करेगा और जहां द्वेष करेगा वहां कुछ भी अनर्थ होने की सम्भावना रहती है। इसलिए राग-द्वेष का त्याग कर सबके साथ प्रेम से रहे तो शांति मिलेगी।

दूसरी है इन्द्रियां। मनुष्य के पास आंख, नाक, कान, जीभ और त्वचा ये पांच इन्द्रियां हैं। इनका दुर्गुण हैं पांच विषय—शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गंध की आसक्ति। यह आसक्ति मनुष्य को कभी चैन से रहने नहीं देती है। जब तक इस आसक्ति को नष्ट नहीं करेंगे तब तक शान्ति नहीं मिलेगी। इतना तो सच है, आंख से रूप विषय को चाहे जितना ही देख लें उससे तृप्ति नहीं मिलेगी। नाक से चाहे जितना ही गंध लें उससे तृप्ति नहीं मिलेगी। कान से शब्द (गीत या और कुछ) चाहे जितना सुनें उससे तृप्ति नहीं मिलेगी। जीभ से अनेक प्रकार के व्यंजन में चाहे जितना स्वाद लें स्वाद से तृप्ति नहीं मिलेगी। रोगी भले हो जायेंगे। त्वचा से स्पर्श (विजातीय घट से सम्बन्ध) चाहे जितना करें, उससे संतुष्टि नहीं मिलेगी। बल्कि तृष्णा (वासना) और बढ़ जायेगी। क्योंकि भोगों से तृप्ति नहीं मिलती है। भोग के पीछे दौड़ने वाले आदमी की दशा बड़ी दयनीय हो जाती है। भगवान बुद्ध ने कहा है—

सुभानुपरिस्सं विहरन्तं इन्द्रियेसु असंवृतं।
भोजनमिह अमत्तञ्जुं कुसीतं हीनवीरियं
तं वे पसहति मारो वातो रुक्खं व दुब्बलं

अर्थात् जो मनुष्य विषय भोग में सुख मानकर विहरता है, इन्द्रियों का संयम नहीं रखता, भोजन की मात्रा नहीं समझता, आलसी और मन का दुर्बल, उद्योग हीन है; उसे मनोविकार उसी प्रकार रौंदते हैं जिस प्रकार आंधी दुर्बल वृक्ष को। इसके आगे और कहते हैं—

असुभानुपरिस्सं विहरन्तं इन्द्रियेसु सुसंवृतं।
भोजनमिह च मत्तञ्जुं सद्धं आरद्ध वीरियं
तं वे नप्पसहति मारो वातो सेलं व पब्बतं

निज आतम में अनुराग हुआ

रचयिता—चन्दूलाल कबीरपंथी

दुखमय संसार में सुख समझ,
मन रागी होकर दुःखी हुआ।
जब जग में दुःख ही दुःख देखा,
तब लौट स्वयं में सुखी हुआ

जब तक हम बाहर लगे रहे,
तब तक बैठे थे खाली हो।
जब बाहर विश्व दुखद देखा,
तब भीतर बैठ जुगाली हो

यह अजब अनोखा अनुभव है,
बाहर झपटा भीतर छूटा।
आतम सुख भीतर तभी मिला,
जब बाहर जग से मन टूटा

जब बाहर दुःख ही दुःख देखा,
तब दुनियाँ से वैराग हुआ।
फिर “चन्दु” लौट निजमें आये,
निज आतम में अनुराग हुआ

जो विषय भोग को दुखदायी समझते हुए विहरता है, इन्द्रियों पर संयम रखता है, भोजन की मात्रा समझता है, श्रद्धावान तथा परिश्रमी है, उसको मनोविकार उसी प्रकार नहीं डिगा सकते जिस प्रकार वायु शिलामय पर्वत को। कठोपनिषद् में भी बात आती है—

यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।
बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहुः परमां गतिम्।

जब पांचों ज्ञानेन्द्रियां और मन के सहित बुद्धि भी चंचलता छोड़कर शांत हो जाती है इसी को परम गति कहते हैं। सार बात है सुख-शांति तथा मोक्ष का एक ही उपाय है कि अपने मन और इन्द्रियों को वश में करे। उनमें जो विकार है उसे त्याग करे। □

आत्म दर्शन

लेखक—विमलनाभ श्रीवास्तव

आत्मा का स्वरूप मूलतः शुद्ध, निर्मल, स्वच्छ, शीतल एवं निर्विकार है। जैसा कि गंगा के उद्गम स्थान गंगोत्री से निकलने वाला गंगाजल। यह गंगाजल जब वर्षा के जल से मिलता है तब नीचे की ओर बहाव पाने से प्रवाह तेज एवं अनियंत्रित हो जाता है और उसमें बहुत सारे गंदे पदार्थ मिलकर उसको प्रदूषित एवं मटमैला कर देते हैं। जिसके कारण गंगाजल का शुद्ध स्वरूप नहीं दिखाई देता है। केवल उसका विकृतरूप ही दिखाई देता है।

इसी प्रकार जब शुद्ध आत्मा का सम्बन्ध चित्त (मन) से हो जाता है तो इसमें इन्द्रियों की भोग वृत्ति का प्रवाह तेज हो जाता है। इन्द्रियां अनियंत्रित हो जाती हैं और आत्मा का मूल शुद्ध स्वरूप दिखाई नहीं देता है। क्योंकि इन्द्रियों की मलिन वासनाओं के कारण आत्मा आच्छादित हो जाता है।

जब वर्षा काल समाप्त हो जाता है तो जल का प्रवाह मन्द पड़ने लगता है और उसकी मलिनता धीरे-धीरे नीचे बैठती जाती है जिससे पुनः जल स्वच्छ दिखाई देने लगता है। फिर भी मलिनता के विकार उसके आधार पटल पर जमा रहता है। यदि किसी कारण से जल के आधार पटल को उद्वेलित किया जाता है तो पुनः मलिनता ऊपर आ जाती है और जल का शुद्ध स्वरूप दिखाई नहीं पड़ता। यदि हम जल में अपना चेहरा देखना चाहते हैं तो यह आवश्यक है कि जल शान्त हो अर्थात् उसमें कोई हलचल न हो तथा उसके अन्दर मलिनता न हो। अतः यह सावधानी बराबर रखनी पड़ेगी कि जल उद्वेलित न होने पाये।

ठीक इसी प्रकार जब चित्त का प्रवाह बाहर की ओर न होकर अन्तर्मुख हो जाता है तो चित्त की सक्रियता मन्द पड़ने लगती है और इन्द्रियों की भोग वृत्ति का प्रवाह रुक जाता है तब आत्मा का शुद्ध स्वरूप दिखाई देने लगता है जो शाश्वत, सनातन एवं

अनादि है। परन्तु चित्त के स्मृति पटल पर भोगवृत्तियों का प्रभाव संस्कार के रूप में रहते हैं जो लेश मात्र असावधानी के कारण बहुत वेग से प्रस्फुटित होकर आत्मा को मलिन वासनाओं से आच्छादित कर लेते हैं जो जीव को पुनः अधोगति की ओर ले जाने में सक्षम हो जाते हैं। जिसके कारण जीवन की नौका भवसागर के पार आते-आते किनारे ही आकर डूब जाती है। अतः यह आवश्यक है कि हमारी भोग वृत्तियों के संस्कार पुनः जागृत न हों। इसके लिए व्यवहार कार्य करते हुए हमारा ध्यान आत्मस्वरूप पर उसी प्रकार रहे, जैसा पनिहारिन का ध्यान उबड़-खाबड़ मार्ग पर चलते हुए भी अपने सिर पर रखे घड़े पर होता है।

आत्मा के शुद्ध स्वरूप को देखने के लिए, जल में अपना चेहरा देखने की भांति ही चित्त में कोई हलचल नहीं होनी चाहिए अर्थात् चित्त निर्विकार एवं संकल्प शून्य तथा मनोविकार से रहित होना चाहिए अन्यथा आत्मा के स्वरूप के स्थान पर विचारों एवं संकल्पों का स्वरूप ही दिखाई देगा।

गंगाजल तो प्राकृतिक रूप से वर्षा ऋतु के समाप्त होने पर प्रवाह कम होने से स्वच्छ एवं शान्त हो जाता है। फिर भी पूर्ण स्थिर करने के लिए उसके प्रवाह को जलाशयों में बांध कर शान्त करना पड़ता है। परन्तु इस चित्त को मलिन करने वाली भोगवृत्तियों के प्रवाह को कैसे रोका जाये जिससे चित्त की मलिनता समाप्त हो और वह अडोल (स्थिर) एवं शान्त हो जिससे आत्मा का वास्तविक स्वरूप दिखाई दे इसका समाधान केवल सद्गुरु के सान्निध्य में रहकर धारणा-ध्यान-समाधि के द्वारा चित्तवृत्तियों के निरोध से ही हो सकता है। जिसको योग की संज्ञा दी गई है। इसके द्वारा यह समझ कर कि संसार एवं शरीर से अपना कोई स्थायी सम्बन्ध नहीं है। अतः इनसे अपना वियोग ही सर्वथा उचित

(शेष पृष्ठ पर)

शंका समाधान

प्रश्न—धर्मेन्द्र मौर्य, देवलखा, बहराइच, उ. प्र.

. प्रश्न—कटु सत्य और बुराई में क्या अंतर है?

उत्तर—किसी की भावनाओं की परवाह किये बिना तथा उसकी मानसिकता को समझे बिना, बिना लागलपेट के सत्य को ज्यों-का-त्यों कहना कटु सत्य है। यद्यपि सत्य न कटु होता है और न मीठा होता है, सत्य तो केवल सत्य होता है, परन्तु जब हम अपनी धारणा एवं मान्यता के विपरीत कोई बात सुनते हैं तब वह हमें कड़वी लगती है, चाहे वह कितनी भी सच एवं हितकर क्यों न हो।

कटु सत्य कहने में किसी का अहित करने या उसे दुखी करने, नीचा दिखाने, बदनाम करने की भावना नहीं होती, किंतु जो जैसा है उसे उसी रूप में प्रस्तुत करना होता है, किंतु बुराई में सदैव जिसकी बुराई की जाती है उसे नीचा दिखाने, दुखी करने एवं उसका अपमान करने का भाव होता है।

किसी की गलती को, चाहे वह गलती वैयक्तिक हो या सैद्धांतिक, सामने सुधार की दृष्टि से कहना कटु सत्य है और पीठ पीछे निंदा की दृष्टि से कहना बुराई है। बुराई सदैव गलत भावना रखकर की जाती है और सत्य कथन में वास्तविकता का निरूपण करना, जो जैसा है उसे वैसा कहना होता है। यदि सत्य कथन में भी किसी को नीचा दिखाने या बदनाम करने का भाव है तो वह भी बुराई है। हमें किसी की बुराई नहीं करना चाहिए क्योंकि हमें स्वयं अपनी बुराई पसंद नहीं है, परन्तु सत्य तथ्य को भी इस ढंग से प्रस्तुत करना चाहिए कि वह अप्रिय, कटु न लगकर प्रिय-हितकर लगे और लोग उसे स्वीकार कर सकें। अहंकार, पक्षपात एवं हठ छोड़कर विनम्रता एवं सरलतापूर्वक सत्य कहने पर वह कटु न होकर प्रिय एवं ग्राह्य हो जाता है, इस बात का ध्यान रखना होगा।

. प्रश्न—प्रेम और मोह में क्या अंतर है?

उत्तर—प्रेम निष्पक्ष होता है और मोह पक्षपातपूर्ण। प्रेम विस्तृत होता है और मोह संकुचित, प्रेम निष्काम होता है और मोह कामनायुक्त। प्रेम का परिणाम कभी दुखद नहीं होता किंतु मोह का परिणाम सदैव दुखद होता है। प्रेम बंधन का कारण नहीं बनता, किंतु मोह बंधन का कारण बनता है।

मोह जिसके प्रति होता है उसे भौतिक दृष्टि से येन-केन-प्रकारेण अधिक संपन्न बनाने की चेष्टा की जाती है, किंतु प्रेम में भौतिक समृद्धि-सुविधा की अपेक्षा प्रिय की मानसिक प्रसन्नता, आत्महित का ध्यान रखा जाता है। मोह जिसके प्रति होता है उसकी कमजोरियों, गलतियों, दुर्गुणों से आंखें मीच ली जाती हैं, किंतु प्रेम में ऐसा नहीं होता, उसमें तो प्रिय के दुर्गुणों-गलतियों को यथासंभव दूर करने का प्रयास किया जाता है।

. प्रश्न—वासना और आसक्ति के अर्थ क्या हैं?

उत्तर—किसी प्राणी-पदार्थ की तरफ मन का बार-बार खिंचते रहना, उसकी याद कर व्याकुल होते रहना, उसके बिना न रह पाना आसक्ति है और उसके मिल जाने पर उसे देख-सुन-भोगकर मन में उसकी जो छाप पड़ती है वह वासना है।

किसी प्राणी-पदार्थ के संयोग-उपभोग से जब सुख की अनुभूति होती है तब उसका बार-बार संयोग-उपभोग करने की इच्छा होती है और बार-बार संयोग-उपभोग करते रहने से एक समय ऐसी स्थिति आती है कि उसके बिना रहना कठिन बन जाता है, यही आसक्ति है।

प्रश्न—रूपेन्द्र कुमार, सागर, म. प्र.

. प्रश्न—आत्म अस्तित्व का क्या प्रमाण है?

उत्तर—आत्म अस्तित्व का सबसे प्रबल प्रमाण तो आप का होना है। सब पर संदेह किया जा सकता है, किंतु स्वयं पर संदेह तो कभी किसी को नहीं होता। कभी किसी को ऐसा अनुभव नहीं होता कि मैं नहीं हूँ। हर मनुष्य को, और मनुष्य ही नहीं प्राणिमात्र को अपनी

उपस्थिति, अपने होने का भान सब समय बना रहता है। आत्म अस्तित्व का इससे प्रबल प्रमाण और क्या हो सकता है।

किसी भी भौतिक द्रव्य में, उसका नाम चाहे जो रख लिया जाये, चेतना गुण, ज्ञान गुण नहीं है। जिन भौतिक द्रव्यों में चेतना गुण नहीं है उनके कार्यों में चेतना गुण कैसे आ सकता है, परंतु चेतना गुण प्रत्यक्ष है। यह चेतना गुण आखिर किस द्रव्य का है। बिना द्रव्य के कोई गुण रह नहीं सकता। गुण गुणी में, द्रव्य में ही रहेगा। यह चेतना गुण जिस द्रव्य का है उसी को आत्मा, चेतन, जीव आदि कहा जाता है। चेतना गुण आत्म अस्तित्व का प्रबल प्रमाण है।

. प्रश्न—मनुष्य जीवन का परम लक्ष्य क्या है और क्या मनुष्य अपने लक्ष्य की प्राप्ति इसी जीवन में कर सकता है?

उत्तर—मनुष्य जीवन का परम लक्ष्य है पूर्ण आत्मतृप्ति, आत्मसंतुष्टि और आत्मशांति। अधिक धन, विद्या, पद, प्रतिष्ठा मनुष्य जीवन का लक्ष्य नहीं है, क्योंकि इन सबके मिल जाने पर मन की जलन-पीड़ा मिट नहीं सकती। धन, विद्या, पद आदि तो जीवन निर्वाह, सेवा, लौकिक व्यवस्था के साधन हैं, इसलिए जीवन में इनकी आवश्यकता है और इनकी प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना भी आवश्यक है, परंतु ये जीवन का परम लक्ष्य कभी नहीं हो सकते। सोचना यह है कि आदमी धन, विद्या, पद क्यों चाहता है। मन की शांति-संतुष्टि के लिए ही तो। यदि मन तृप्त, संतुष्ट एवं शांत नहीं है तो बाह्य कोई भी उपलब्धि सुख-प्रसन्नता नहीं दे सकती और यदि मन तृप्त, संतुष्ट, शांत है तो फिर दुख कहां है। इसलिए पूर्ण आत्मतृप्ति, आत्मसंतुष्टि एवं आत्मशांति ही मानव जीवन का परम एवं चरम लक्ष्य है और हर मनुष्य अपने इस लक्ष्य को इसी जीवन में प्राप्त कर सकता है। जिसे हम इस जीवन में प्राप्त नहीं कर सकते वह जीवन का लक्ष्य हो ही नहीं सकता।

. प्रश्न—सेवा किसकी और कैसे करनी चाहिए।

उत्तर—सेवा तो जब, जैसी, जितनी और जिसकी बन पड़े करना चाहिए। इसमें कोई सीमारेखा नहीं खींची जा सकती। मनसा, वाचा, कर्मणा जब जैसी बन सके सेवा करनी चाहिए। खास बात है सेवा की रुचि, भावना का होना।

दीन-दुखी, लाचार-असहायों की सेवा दया-करुणा की भावना से; माता-पिता, बड़े-बुजुर्गों की सेवा आदर एवं कर्तव्य भावना से तथा संत-महात्मा, ज्ञानी-गुरुओं की सेवा श्रद्धा-भावना से की जानी चाहिए। जब जिसकी सेवा का अवसर मिले सदैव प्रसन्नचित्त से सेवा करना चाहिए। सेवा करते समय मन में यह भाव नहीं आना चाहिए कि सेवा करके इन पर मैं उपकार या अहसान कर रहा हूँ, किंतु यह सोचना चाहिए कि सेवा का अवसर देकर ये मेरे ऊपर अहसान कर रहे हैं, मैं इनका आभारी हूँ जो इन्होंने मुझे सेवा का अवसर दिया। सेवा प्रतिदान का भाव रखकर नहीं, किंतु कर्तव्य समझकर निष्काम भाव से करना चाहिए।

—धर्मेन्द्र दास

(शेष पृष्ठ पर)

एवं श्रेयकर है। इसको महर्षि पतंजलि के शब्दों में योग का वियोग कहा गया है। यही आत्म दर्शन का मार्ग है जिससे जग से छुटकारा (मोक्ष) प्राप्त हो सकता है।

कोई रहनी सम्पन्न सद्गुरु जिन्होंने आत्म दर्शन के मार्ग पर चलकर अपने परम लक्ष्य को प्राप्त किया है और उसी के अनुरूप अपने जीवन को ढाल कर सबके समक्ष आदर्श प्रस्तुत किया है वही दूसरों को अपने निजस्वरूप में स्थित होने का मार्ग निदर्शन कर सकते हैं। ऐसे सद्गुरु के अनुभव का लाभ वही प्राप्त कर सकता है जिसे सद्गुरु के प्रति पूर्ण श्रद्धा, भक्ति, आस्था एवं दृढ़ विश्वास हो और जिसमें धैर्यपूर्वक लगन के साथ निरन्तर उनके बताये मार्ग पर चलने का साहस हो।

मानुष जन्म चूकेहु अपराधी

(परम पूज्य गुरुदेव श्री अभिलाष साहेब जी द्वारा, कबीर मंदिर, प्रीतमनगर, इलाहाबाद में
रविवारीय सत्संग में दिया गया प्रवचन। प्रस्तुति—रामकेश्वर)

सज्जनो तथा देवियो! हम लोगों को जो जिंदगी मिली है, वह बीत रही है और बीतते-बीतते एक दिन एकदम बीत जायेगी। हमारे पहले के लोगों की जिंदगी बीत चुकी है। हम लोगों के सामने ही अनेक लोग आये और चले गये, उनकी जिंदगी बीत गयी। हम रात-दिन देखते हैं कि एकाएकी सभी जा रहे हैं। हमारे पास पत्र और तार आते हैं और फोन पर भी संदेश आते हैं कि अमुक सज्जन नहीं रहे। यही प्रक्रिया अनादिकाल से चालू है और आगे भी अनन्तकाल तक चलती रहेगी। हमें जिंदगी बहुत थोड़े समय के लिए मिली है। इसलिए हमें इस जिंदगी का अच्छा उपयोग करना है और इसके लाभ-हानि को समझना है।

जिंदगी में लाभ क्या है? इस जिंदगी से यही लाभ है कि हमें शांति मिले और जिंदगी में हानि क्या है? हानि यही है कि हम अशांत हो जायें। यह संसार हमें हरदम छलता रहता है अथवा यों कहिये कि हम ही अपने आपको इस संसार से छलाते रहते हैं। नहीं तो, यह संसार हमें क्या छलेगा। संसार में इतना दम नहीं है कि यह हमें छल ले। हम स्वयं अपने आपको छलाते हैं या छलते हैं। जहां तक संसार है उसका राग, उसके संस्कार हमारे अन्दर इकट्ठा होते रहते हैं और वही संस्कार हमें बेचैन करते रहते हैं।

मनुष्य की जिंदगीभर की कमाई क्या है? संस्कारों की कमाई। जो कुछ हम देखते हैं, सुनते हैं, भोगते हैं, उन्हीं की छाप हमारे मन पर पड़ती रहती है और वे ही संस्कार हैं। वे ही संस्कार हमारी जिंदगी की पूंजी बनते हैं। अगर वे संस्कार अच्छे हैं तो हमें आनन्द देते हैं और अगर खराब हैं तो हमें बेचैन किये रहते हैं। जीवन में सफलता और असफलता यही है—अच्छे और बुरे संस्कार। ऐसे संस्कारों का संग्रह हमारे जीवन में न हो कि जिनसे हम बेचैन हों किंतु ऐसे संस्कारों का ही संग्रह

हो कि जिनसे हमें शांति मिले। इसलिए बड़ी सावधानी से हमें जिंदगी जीना है।

जिंदगी जीने के लिए सदबुद्धि की आवश्यकता है और सदबुद्धि अच्छी संगति और अच्छे साहित्य से प्राप्त होती है। इसका उलटा भी होता देखा जाता है कि दुष्ट प्रकृति का कोई आदमी अच्छी संगति में दीर्घकाल तक भी रहे तो उसमें परिवर्तन नहीं आता क्योंकि उसका मन ही कुछ और होता है। ऐसे दुष्टों को समझना सरल नहीं होता। नीति में लिखा है कि सज्जन को बहुत जल्दी समझ लिया जाता है लेकिन दुष्टों को समझना सरल नहीं है। दुष्ट लोग जल्दी समझ में नहीं आते।

हंसों के झुण्ड में कभी-कभी बकुले भी आ जाते हैं। बकुले हंसों की अपेक्षा अधिक सफेद होते हैं। तो उन बकुलों को अच्छे-अच्छे लोग भी नहीं परख पाते हैं। हंस तो नीर-क्षीर विवेक करते हैं लेकिन उनके बीच में होने से बकुले भी नीर-क्षीर विवेक करें यह सम्भव नहीं है। बकुलों में नीर-क्षीर के विवेक की शक्ति नहीं आती है। वे तो कीड़े खायेंगे, मछली खायेंगे, गंदी चीजें खायेंगे और रहेंगे हंसों में, लेकिन होगा वही कि “उघरे अंत न होय निबाहू। कालनेमि जिमि रावण राहू”। ऐसे ही दुष्टों का उभरना तो निश्चित है। देर या सबेर, दुष्ट लोग अपनी दुष्टता दिखा ही देते हैं।

ऐसे ही जो लोग मन में गंदगी लेकर सत्संग में जाते हैं या संतों में निवास करते हैं वे भला पायेंगे क्या! वे गंदगी ही पायेंगे। संतों में उनको दोष ही दिखाई देगा। दूध वही होता है लेकिन सांप उसको पीये तो विष बनता है और एक बच्चा पीये तो उसके शरीर में बल बनता है।

ज्ञानं सतां मानमदादिनाशनं केषांचिदेतन्मदमानकारणम्।
स्थानं विविक्तं यतिनां विमुक्तये कामातुराणामतिकामकारणम्

भर्तृहरि जी महाराज ने कहा है कि ज्ञान सुपात्र में मान और मद को घटाता है लेकिन कुपात्र में जाकर मान और मद को बढ़ाता है।

एकान्त भी ऐसे ही है। कोई त्यागी योगी पुरुष या संत-साधक एकान्त में जाये तो उसका चित्त ज्ञान-वैराग्य से भर जाता है। उसका मन समाधि में लीन हो जाता है लेकिन कामी व्यक्ति यदि एकान्त में जाये तो वह कामविह्वल हो जाता है। एकान्त में कामी का काम प्रदीप्त हो जाता है और एकान्त में साधक का मन समाधि में लीन हो जाता है। एकान्त वही है, चीज वही है लेकिन पात्रता-कुपात्रता के कारण बड़ा अंतर हो जाता है। जो मनुष्य अपने मन में मुमुक्षा, सेवा, साधना का भाव न लेकर कुछ और ही भाव लेकर, किसी स्वार्थवश साधु की संगति में रहता है तो साधु की कोई बात उसके हृदय में नहीं बिधती। वह तो अपने तथा दूसरों के लिए मानो बिगाड़ी घड़ी बनकर रह जाता है। वह अपने को तो बिगाड़ता ही है, दूसरों को भी भ्रमित करता है, बिगाड़ता है। इसलिए यह भी सच है कि अच्छी संगति पाकर भी कुछ लोग सुधरते नहीं क्योंकि उनमें सुधरने की इच्छा नहीं होती। वे तो किसी स्वार्थवश ही साधुसंगति की आड़ लिये रहते हैं फिर भी ऐसे लोगों का प्रमाण माना नहीं जाता बल्कि प्रमाण उनका माना जाता है जो निर्मल हृदय के हैं, जो कल्याण चाहते हैं, सुधार चाहते हैं। निश्चित है कि ऐसे लोगों का अच्छी संगति में सुधार होता है।

अच्छी संगति और अच्छी पुस्तकों से अच्छी बुद्धि बनती है। अच्छी बुद्धि से अच्छे कर्म होते हैं और अच्छे कर्मों से ही अच्छे संस्कार बनते हैं। अच्छे संस्कार ही हमारी अच्छी पूंजी है। पैसा कितना हमने जमा किया, हमारा काम-धाम कितना बढ़ गया, खेत-पात और जमीन-जायदाद कितने हो गये, कितना परिवार बढ़ गया और कितनी प्रतिष्ठा बढ़ गयी, यह हमारी सफलता नहीं है। यह तो बहुत बाहर-बाहर की चीजें हैं। लगता तो है कि यह भी सफलता है लेकिन इन सफलताओं में गुजरते हुए भी हमें शांति कहां मिलती है। धन बढ़ जाता है तो शांति कहां मिलती है। परिवार और प्रतिष्ठा बढ़ जाने पर मन विश्राम पा जाये ऐसा तो होते देखा नहीं

जाता है। मन को शांति मिले वही जीवन सफल जीवन है। इसलिए हमारे कर्म अच्छे हों जिससे संस्कार भी अच्छे हों।

पवित्र मनवाला मनुष्य हर समय आनन्दित रहता है और गंदे मनवाला सब समय पीड़ित रहता है। बाहर-बाहर से हम भले ही कुछ दिन अपनी मलिनता को छिपाये रहने में समर्थ हो जायें लेकिन राम से छिपाकर रखना सम्भव नहीं है। राम अन्दर बैठा है और वह सबकुछ को हर समय जानता रहता है। हमारे सारे कर्म उसके ही साक्षित्व में होते हैं।

राम झरोखे बैठे के, सबका मुजरा लेहें।

जाकी जैसी चाकरी, ताको तैसी देहें

यह साखी बचपन में मैं मां के मुख से सुनता था। उस समय मुझे यही लगता था कि कोई ऊंची जगह होगी जहां पर राम बैठे होंगे और वहां एक झरोखा भी खुला होगा। उसी झरोखे से राम नीचे सबको देखते होंगे। उनकी आंखें बड़ी तेज होंगी और जो जैसा करता है उसे वैसा फल वे देते होंगे। बचपन की तो बातें ही बड़ी निराली और विचित्र हुआ करती हैं। उस समय बड़ा भोलापन रहता है। धीरे-धीरे मैंने बातें समझीं। राम झरोखे में बैठा है इसका मतलब है कि राम हृदयरूपी झरोखे में बैठा है और वहां से सबका मुजरा लेता है। हमारा जो ज्ञान है वह युक्तियुक्त और व्यावहारिक होना चाहिए। आकाश-पाताल की तरह पहुंच के बाहर की सैद्धान्तिक बातें हम कह लें किंतु समझ में न आये तो उनको कहने-सुनने से कोई फल नहीं होता। भगवान बैठकर सबको देखता है—ऐसा कह दिया लेकिन अनुभव क्या है? कहां बैठे-बैठे वह देखता है इसका कुछ पता भी तो चलना चाहिए। ऐसे कह देने से कि राम झरोखे में बैठकर सबको देखता है, आदमी को बोध नहीं होता है। इस बात का कुछ व्यावहारिक पक्ष है जिसे जानना चाहिए। इस हृदयरूपी झरोखे में आत्मा राम बैठा है और सबका मुजरा ले रहा है। जैसा हम करते हैं, वैसा संस्कार हमारे सामने आते हैं।

हम अपने पाप को सबसे छिपा सकते हैं लेकिन राम से नहीं छिपा सकते। राम से यानी अपनी अंतरात्मा से हम अपने पाप को कैसे छिपा सकते हैं क्योंकि वह

तो सबका साक्षी है। गलत हम करेंगे तो अंतरात्मा हमें पीड़ित करती रहेगी। यह व्यावहारिक ज्ञान है और राम की युक्तियुक्त परिभाषा है। राम अन्दर में बैठा है। ऋषियों ने भी कहा है—

*अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम् ।
तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमात्मनः*

ऋषि कहते हैं कि जो सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है और अपने गुणों में महान से भी महान है, वह आत्मा, वह ब्रह्म, वह राम, सबके हृदयगुहा में बैठा है। आदमी जब कुछ समय निकालता है और दुनिया के कर्मप्रपंचों से थोड़ा हटकर साधना में लगता है तथा अपने मन पर पड़े प्रभावों को हलका करता है, तब उस चीज को वह समझ सकता है।

दो बातें ऋषि बताते हैं। एक यह कि केवल दुनिया की घुड़दौड़ में ही लगे न रहो। समय निकालो और सत्संग करो, स्वाध्याय करो, मनन-चिंतन करो। ऋषि कहते हैं—‘अक्रतु’ होओ। कर्म से अलग होओ। कुछ समय के लिए सारे कर्मप्रपंचों को छोड़कर दुनिया के सारे गोरखधन्धों से हटकर साधना में लगे। यह पहली बात हुई—अक्रतु हो जाना अर्थात् कर्मप्रपंचों से हट जाना।

दूसरी बात ऋषि कहते हैं—“वीतशोको” तुम्हारे हृदय पर संसार के जो घात-प्रतिघात पड़ते हैं, उनसे प्रभावित न हो। संसार का स्वभाव है चोट देते रहना। हर समय चोट-चोट-चोट। चोट के सिवाय इस संसार में और क्या है। अपना ही पुत्र कहा नहीं मानता है। अपनी ही पत्नी गुराकर बोलती है। पतोहू, भाई तथा और भी जितने अपने माने गये लोग हैं वे अच्छा व्यवहार नहीं करते हैं। हमारा पड़ोसी भी बुरा मानता है। लोग व्यंग्य वाक्य बोलते हैं और हमारे साथ कठोर व्यवहार करते हैं। प्रकृति के द्वारा ठंडी-गरमी की मार अलग से पड़ती ही है तथा और भी ना-मालूम कितनी-कितनी प्रतिकूलताएं आती हैं। इस प्रकार अनेक घात-प्रतिघात हमारे अंतःकरण पर पड़ते रहते हैं। उनमें हम यदि सम रह सकें तभी हम अध्यात्ममार्ग में प्रवेश पा सकते हैं। अगर हम जरा-सी भी प्रतिकूलता पाकर हाय-हाय करने लगें और जरा-सी अनुकूलता पाकर भी

फूलकर कुप्पा होने लगें तो हम साधना में आगे नहीं बढ़ सकते। जरा-जरा सी अनुकूलता-प्रतिकूलता में जो आदमी फूलता-पचकता है, वह साधना में आगे नहीं बढ़ सकता।

जिंदगी के साथ ही जिंदगी के घात-प्रतिघात समाप्त होते जाते हैं। अपना काम वही कर सकता है जो दुनिया के घात-प्रतिघात को प्रसन्नतापूर्वक सहन करता है और इनसे विचलित नहीं होता बल्कि सदैव अविचलित और स्थिर रहता है।

हम समझते हैं कि हमारे समान कोई दुखी नहीं है। सबकी यही बात है। बहुत-से लोग कहते हैं कि हमारे समान कोई दुखी न होगा। अधिकतम लोगों को यह भ्रम है कि सबसे दुखी वे ही हैं। हमारा यह भ्रम है कि हम ही सबसे दुखी हैं। हम ऐसा मान लेते हैं और यह हमारी भावना है, भावुकता है। दुख मानना तो हमारी सबसे बड़ी कायरता है। हम दुखी हैं इसका मतलब है कि हम कायर हैं। कायर हम न होते तो दुखी क्यों होते। क्या हम निरन्तर परिवर्तित होती हुई वस्तुओं को स्थिर कर लेंगे। क्या हम शरीर में आते हुए बुढ़ापा को रोक लेंगे। क्या हम किसी का मरण रोक देंगे। क्या दूसरे के मन को अनुकूल बनाने के लिए हम कोई प्रयास कर पायेंगे। कुछ भी हम नहीं कर पायेंगे। हम अपने आपको अनुकूल बना लें, बस। यही हम कर सकते हैं। हम सोचें कि सब अनुकूल हो जायें तो यह कहां होनेवाला है। यह कभी भी सम्भव नहीं है।

जो करना हमारे लिए सम्भव है, वह तो हम करते ही नहीं हैं और जो करना सम्भव नहीं है, उसी के लिए सोच-सोचकर परेशान रहते हैं। अरे भाई, हम अपने आप को अनुकूल बनायें। हम अपने स्वभाव को अनुकूल बनायें। जो अपने को ठीक कर लेता है वह चिंता नहीं करता। आदमी की जिम्मेदारी पूर्णतः अपने ही ऊपर है दूसरे पर कतई नहीं है। पत्नी, पुत्र, माता-पिता, भाई, शिष्य किसी पर भी आपका अधिकार नहीं है कि आप उसको सुधार दें। हां, आप रास्ता बता सकते हैं क्योंकि किसी को सुधारने का रास्ता ही बताया जा सकता है लेकिन सुधार तो हम केवल अपना ही कर सकते हैं। इसलिए अपने को सुधारें और दूसरा क्या

करता है उसको लेकर चिंता न करें। जो जैसा करेगा वैसा भरेगा।

हमारा अधिकार केवल अपने को सुधारने में ही है। दूसरे को सुधारने का हमें कोई अधिकार ही नहीं है। दूसरों को हम केवल रास्ता दिखा सकते हैं, उपाय बता सकते हैं। स्वयं चलकर और वाणी से कहकर उनको हम प्रेरित कर सकते हैं बस। दूसरों को चलाने का अधिकार हमें नहीं है। जैसे हम नदी में तैरते हैं तो हाथ-पैर जैसे चलाया जाता है वैसे चलाते हैं तब तैर पाते हैं। दूसरा भी यदि तैरना चाहे तो वह भी वैसे ही हाथ-पैर चलाये और तैरे। अब दूसरे के हाथ-पैर को पकड़कर पटकाना और तैराना तो किसी के लिए सम्भव ही नहीं है। इसलिए मनुष्य को ग्लानि नहीं करनी चाहिए कि लड़का, पत्नी, भाई, माता, पिता, पड़ोसी, बच्चे कोई सुधर नहीं रहा है। इसके लिए ग्लानि करके दुखी न हों बल्कि स्वयं शुद्ध हों। दूसरों के लिए रास्ता बतायें, स्वयं पीड़ित न हों।

सबको ठीक करके ठीक होना असम्भव है। यह उदाहरण मैं आप लोगों के सामने बराबर देता रहता हूँ कि पूरी दुनिया में चाम बिछाकर चलने की शक्ति किसी महाराजा के पास भी नहीं है। लेकिन अपने पैरों में अगर जूते पहन ले तो मानो पूरी दुनिया में चाम बिछ गया। इसलिए सबको सुधारने का हठ बेकार है। अपने को सुधारने की जरूरत है।

हम अपने को सुधार लें तो सारा संसार मानो सुधरा है। कुछ समाज सुधारकों को जो यह बेताबी रहती है, यह भावना रहती है कि हम पूरी दुनिया को सुधार देंगे, वह बेताबी सुधरनेवालों में नहीं रहती है। ऐसे कितने बीड़ी-सिगरेट पीनेवाले मिलेंगे कि उनके सामने माथा पटकते रहो चार घंटे और समझाते रहो उनको कि बीड़ी-सिगरेट पीने से बहुत हानि है लेकिन वे समझेंगे नहीं। वे कहेंगे—“अच्छा महाराज! देखा जायेगा। हम सोचेंगे।” मालूम होता है कि ऐसा कहकर वे हमारे ऊपर बड़ी कृपा कर रहे हैं। इसलिए सुधारकों को समाज में सुधार लाने की जो बेताबी होती है, वह बेताबी समाज में नहीं होती है।

महात्मा गांधी राजनीति में जब प्रवेश किये थे तब उनका इतना ही काम न था कि कांग्रेस का काम कर दो,

पार्टी का काम कर दो, किंतु उनका काम बड़ा व्यापक और बड़ा विस्तृत था। वे जहां जाते थे वहां की सफाई करवाते थे, जिस कालोनी में जाते थे वहां की सफाई-स्वच्छता पर ध्यान देते थे। गरीबों के बच्चे अगर पढ़ नहीं रहे हैं तो अपने पास जो साथी होते थे उनसे वे कहते थे कि देखो भाई, इन बच्चों को पढ़ाओ। जो लोग रोगी हैं उनकी दवाई का प्रबन्ध करो। गांधीजी के आह्वान पर दान भी लोग देने लगते थे। गांधी जी जहां भी जाते थे वहां के सुधार की बात वे करते थे और छुआछूत निवारण की बात वे करते थे। गांधीजी कहते थे कि कोई किसी से छुआछूत न माने। इन बातों को लेकर इतनी परेशानी उनको होती थी कि कभी-कभी तो वे रो भी देते थे और कहते थे कि हम तो इनको सुधारने के लिए इतने बेताब हैं लेकिन इन लोगों के मन में जरा भी सिहरन तक नहीं है। ऐसा ही संसार है कि सुधरना नहीं चाहता। इसलिए हमें संसार को सुधारने की बेताबी न हो बल्कि अपने को सुधारने की बेताबी हो तभी ठीक है।

मैं कह रहा था कि संसार के जो घात-प्रतिघात हमारे अंतःकरण पर पड़ते हैं उनको सहने की क्षमता हमारे अंदर होनी चाहिए। अगर हम और आप सुख से जीना चाहते हैं तो निर्विकार भाव से रहें तभी हम आत्मज्ञान पा सकते हैं और आत्मज्ञान में स्थित हो सकते हैं। जीवन में हम हरदम धोखा खाते हैं। जिसको हम अपना मानते हैं वह अपना नहीं है लेकिन जो अपना है उसकी याद भी हम नहीं करते हैं। दुनिया जो अपनी नहीं है, उसको हम अपनी मानते हैं और राम जो अपना है उसकी हम याद भी नहीं करते हैं। साहेब कहते हैं—“कहहिं कबीर सारी दुनिया बिनसे, रहे राम अविनाशी हो” यह दुनिया बिनशती है, राम नहीं बिनशता है। जो अपना नहीं है उसको हम अपना मानते हैं और जो अपना है उससे हम विमुख रहते हैं। यह हमारी कितनी बड़ी नासमझी है। यही नासमझी हमें सुखी और शांत नहीं होने देती। मनुष्य जीवन में होकर भी हम इसी बेवकूफी के कारण अपनी आत्मा में स्थित होने से चूक जाते हैं।

सद्गुरु कबीर ने बीजक के प्रथम प्रकरण में एक रमैनी कही है—

मानुष जन्म चूकेहु अपराधी। यहि तन केर बहुत हैं साझी॥

हमारे मोह-माया को मिटाने के लिए साहेब का यह कितना तीव्र वचन है लेकिन हम विचार करें तब। हम तो विचार ही नहीं करते हैं और इसीलिए इतनी धारदार वाणियां भी कुछ काम नहीं कर पाती हैं।

कबीर साहेब का हृदय इतना तेज और साफ था कि वे जो कहते थे इतना तेज होता था कि मानो एकदम जड़ से उखाड़कर कहते हैं। किसी भी जड़ता और आसक्ति के अंदर में मानो वे तेजाब डाल देते हैं कि वह जड़ता और आसक्ति समूल जल जाये और आदमी का अंतःकरण बिलकुल निर्मल हो जाये। वे कहते हैं— “मानुष जन्म चुकेहु अपराधी”। मानुष जन्म को चूक जाना ही तुम्हारा अपराधी होना है। ‘मानुष जन्म’ हम पाये हैं लेकिन हम चूक रहे हैं। यह अपराध हम कर रहे हैं।

चूकने का मतलब क्या है—भजन न करना, साधना न करना, अपने मन के बंधन को न काटना और अपने आपको मुक्त न करना। हम समझते हैं कि हमने तो खूब बढ़िया मकान बना लिया, फिर हम चूके कहां हैं। हमने तो बैंक में खूब रुपये जमा कर लिये, हमारे खूब लड़के-बच्चे हो गये, हमारी बड़ी प्रतिष्ठा है, अतः सफल तो हम हो ही गये लेकिन विचारो कि कहां सफल हुए। रुपये-पैसे, बाल-बच्चे और मकान-दुकान तथा मान-प्रतिष्ठा में कोई सफल नहीं है। सफल वह है जिसका मन विश्राम करता हो। सफल वह है जिसके मन में शांति हो, जिसका मन सांसारिक संस्कारों में डूबा न हो, उलझा न हो, उद्वेगित न हो, अशांत न हो। जो विकारी न हो किंतु प्रशांत चित्तवाला हो वही सफल है। और भजन की कसौटी भी यही है कि हमारे सारे संस्कार धुल जायें। हमारा मन इस दुनिया में रहते हुए भी दुनिया के ऊपर हो जाये।

हमारा मन कमल के समान निर्लिप्त हो जाये। कमल कीचड़ में होता है लेकिन वह कीचड़ ही नहीं किंतु पानी से भी ऊपर रहता है। अगर पानी बरस जाये और वर्षा का पानी तालाब में आकर पानी बढ़ जाये तो कमल भी बढ़कर पानी के ऊपर हो जाता है। पानी अगर कमल के पत्ते पर या कमल पर पड़े तो वह रुकता नहीं किंतु ढरक कर नीचे

गिर जाता है और कमल सदैव पानी से ऊपर-ऊपर ही रहता है। जिंदगी जीने का तरीका भी यही है कि हम सदैव संसार से ऊपर रहें। ऐसा न हो कि घर में गये, थोड़ा हानि-लाभ देखे कि मारे दुख के व्याकुल हो गये। और ऐसा भी न हो कि बाहर गये और कहीं मान-अपमान पा गये, बस आंदोलित हो गये। जो व्यक्ति ऐसा है वह सफल नहीं है। इसलिए हमें अपने आपको खूब दृढ़ बनाना चाहिए। हम कहीं भी रहें किंतु सांसारिक घात-प्रतिघातों से अप्रभावित रहें। हमें हर जगह, हर समय अपने में अचल रहना चाहिए, स्थिर रहना चाहिए।

हमारे जीवन में जितने हानि-लाभ, सुख-दुख, संयोग-वियोग हैं ये थोड़े ही दिनों में सपना हो जायेंगे। इनका एक दिन पता भी न लगेगा। जो हमारे पास थे और चले गये, संसार से बिदा हो गये, उनको हानि-लाभ कहां रही। जो लोग रात-दिन हाय-हाय करते हुए दौड़ते रहते थे वे मरे तो उनका रखा क्या है। उनका सब बीत गया। ऐसे ही हम लोगों का भी हो जायेगा तब क्यों हम हाय-हाय करते हैं। साहेब कहते हैं कि जो मानुष जन्म को चूक गया, वह अपराधी है। चूकने का मतलब है असावधान होना और भजन न करना।

इसी शरीर के सदुपयोग और दुरुपयोग से मोक्ष और बंधन हैं। इस शरीर का उपयोग भजन में करें तो जीव का बंधन कटता है और भोग में उपयोग करें तो बंधन बनता है। चीज वही है लेकिन उसके सदुपयोग-दुरुपयोग से बड़ा अन्तर हो जाता है। सदुपयोग और दुरुपयोग से सुख और दुख है। इसलिए इस शरीर का हमें अच्छा उपयोग करना चाहिए। इसको माया-मोह में गर्क नहीं करना चाहिए। इस “मानुष जन्म” को हमें ऊपर उठाना चाहिए। “यहि तन केर बहुत हैं साझी”—हम मानते हैं कि हम यह शरीर हैं। अपने को शरीर माननेवाले लोग भोग को ही जीवन का लक्ष्य मानते हैं और भोग को अपने जीवन का लक्ष्य माननेवाले जीवन में पाप पर पाप करते हैं किंतु जो यह मानता है कि मैं शरीर नहीं हूं, मैं तो शुद्ध आत्मा हूं, मेरे जीवन का लक्ष्य भोग नहीं मोक्ष है, वह सांसारिक पदार्थों का उपयोग केवल जीवन गुजर के लिए ही

करता है। भोग के लिए वह उनका उपयोग नहीं करता है।

समझ के कारण बड़ा अंतर हो जाता है। खाना अगल लक्ष्य है तो दिनभर खाने में ही मन लगा रहेगा। वह चाहेगा कि ऐसी चटनी होनी चाहिए, ऐसी दाल होनी चाहिए, ऐसी रोटी और ऐसा भात होना चाहिए। वह खाने के लिए लालायित रहेगा और दिनभर “कुच-कुच” लगाये रहेगा और घरवालों को परेशान करता रहेगा कि खाना अच्छा नहीं मिला, क्या बताऊँ। ऐसा वे इसलिए करते हैं क्योंकि खाने का ही उनका लक्ष्य है। खाना ही को वे अपना उद्देश्य बना लिये हैं।

दूसरा व्यक्ति है जिसका उद्देश्य खाना नहीं है। वह खाना इसलिए खाता है कि अपनी जठराग्नि को तृप्त करना है। जिनके जीवन में खाने का लक्ष्य नहीं है वे अपने भोजन में तीन चीजों का ध्यान रखते हैं। पहली चीज कि भोजन शुद्ध हो। दूसरी भोजन पवित्रता से बनाया जाये और तीसरी भोजन सुपाच्य हो, जल्दी पचनेवाला हो, स्वल्प हो और कम हो। लेकिन शुद्ध, सात्विक और सुपाच्य भोजन में भी हम बड़ी असावधानी कर बैठते हैं और ज्यादा मात्रा में खा लेते हैं। ज्यादा खाकर हम सिर्फ परेशानी ही मोल लेते हैं। इसलिए जो शुद्ध भोजन है वह भी भूख से थोड़ा कम लेने से स्वास्थ्य अच्छा रहता है। कुछ लोग एक प्रकार का अशुद्ध भोजन लेते हैं जिसको मैं ऊपरवाला भोजन कहता हूँ जैसे पान, बीड़ी, सिगरेट, शराब तथा और भी पता नहीं क्या-क्या लोग लेते हैं। यह सब अशुद्ध है। अंडा, मांस, मछली तो और भी अशुद्ध हैं। इन सबसे दूर रहना चाहिए। कुछ लोग जो काया से कमजोर हैं तथा जिनकी पाचन शक्ति ठीक नहीं होती है वे कहते हैं कि शरीर में शक्ति आ जाये इसलिए अमुक-अमुक पाक बनवाया हूँ। उसमें घी, मेवे आदि खूब डालते हैं और खाते हैं लेकिन होता क्या है? वे और अधिक बीमार पड़ जाते हैं। शरीर तो उनका कमजोर रहता है, सादी रोटी और दाल तो उनको पचती नहीं फिर माल-टाल वाला पाक खायेंगे तो बीमार पड़ेंगे ही। बहुत अच्छी पाचन शक्ति हो तभी गरिष्ठ खाद्य पदार्थ कभी-कभी लेना चाहिए और वह भी स्वल्पमात्रा में लेना चाहिए।

—क्रमशः

संत-वाणी

एक क्रियाशील व्यक्ति की तरह सोचो, किन्तु काम एक चिंतक की भांति करो।

जो स्वाभिमानी होता है वह ईमानदार भी होता है।

कौन साथ देगा यह सोच कर बैठे मत रहो। चलते रहो, साथी मिलते जायेंगे।

संख्या को नहीं, किन्तु गुण को महत्त्व दो याद रखो सदैव कंकड़ अधिक हीरे कम तथा भूसा अधिक दाने कम होते हैं।

चाहे कुछ भी प्राप्त कर लो और कुछ भी बन जाओ जब तक मन निर्मल, सरल और निर्ग्रथ नहीं होगा तब तक सच्चा सुख नहीं मिल सकता।

♦ याद रखो, परवशता ही सबसे बड़ा दुख है और आत्म स्ववशता सबसे बड़ा सुख।

♦ जिसे हम अपने जीवन में नहीं प्राप्त कर सकते, वह हमारे जीवन का लक्ष्य हो ही नहीं सकता।

♦ जो सबको जीतकर बड़ा और सुखी होना चाहता है उसकी आशा कभी पूरी नहीं होगी। बड़ा और सुखी वही है जिसने अपने पर विजय पा ली है। यह काम कोई भी कर सकता है।

♦ मनुष्य का जीवन साधन के अभाव में असफल नहीं होता, किन्तु साधना के अभाव में असफल होता है।

♦ महत्त्व इसका नहीं है कि मनुष्य के पास क्या है किन्तु महत्त्व इस बात का है कि उसके पास जो है उसका उपयोग वह किस प्रकार करता है।

♦ जो अपनी निंदा सुनकर क्षुब्ध नहीं होता और दूसरों की निंदा नहीं करता तथा मन, वच, कर्म से किसी को पीड़ा नहीं पहुंचाता वही सच्चा तपस्वी है।

♦ मनुष्य में शक्ति की नहीं, अपितु दृढ़ संकल्प और लगन की कमी होती है, जिससे वह वांछित सफलता नहीं प्राप्त कर पाता।

♦ ऐ मनुष्य, बाहर कहां भटकता है, वास्तविक आनंद और सुख तो तुम्हारे भीतर है।